PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-37 VOLUME-4 IMPACT FACTOR- IIJIF-8.712
ISSN-2454-6283 July-September, 2024

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

(Cosmos- 2019-4.648) Scopus Impact Factor (1.25) Thomson Reuters Edwin Impact Factor-2.88 ETC

https://doie.org/10.0730/shodritu.2024819865

शोध-ऋतु

4

सम्पादक
डॉ.सुनील जाधव

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव

पत्राचार हेतु पता
महाराणा प्रताप हौसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के सामने,
नांदेड -431605 (महाराष्ट्र)

नांदेड-४३१६०५, महाराष्ट्र

web:- www.shodhritu.com
Email - shodhrityu78@yahoo.com
WhatsApp 9405384672

अनुक्रमणिका

1.भारत में गाँधीवादी बुनियादी शिक्षा : वैकल्पिक प्रतिमान ....

–डॉ.मदन लाल बोराणा ....

2.मारवाड़ की रानियों का मंदिरों के निर्माण में योगदान ....

–हीरालाल ....

3."दिव्यांगता अभिशाप नहीं वरदान है" ग्रामीण दिव्यांग महिलाओं के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन ....

–ज्योति रावत, प्रो0 (डॉ0) अर्चना सिंह ....

4.छत्तीसगढ़ी साहित्य में निबंध ....

–श्रीमती माग्रेट कुजूर ....

5.भीमराव अंबेडकर और सामाजिक समरसता ....

–डॉ.गजेन्द्र मोहन ....

6.हरिशंकर परसाई के साहित्य में राजनीतिक व्यंग ....

–डॉ.देवीदास गोपालराव बोर्डे ....

7.पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: एक विश्लेषण(छ.ग.राज्य के बेमेतरा जिले के विशेष संदर्भ में) ....

–डॉ.देवेन्द्र कुमार साहू ....

8.हिंदी भाषा के विकास में मराठी भाषा का योगदान ....

–डॉ.देवीदास गोपालराव बोर्डे ....

9.हिंदी कथा साहित्य में "वृद्ध विमर्श" चुने हुए उपन्यास व कहनियों के संदर्भ में ....

–पवना शर्मा ....

10.लोकतंत्र की दहलीज पर पहरा देती कविताएँ : मतदान केंद्र पर झपकी ....

–शिवम पटेल ....

11.बंजारा समाज के महात्माओं का योगदान ....

–प्रा.डॉ.पवार आर.एस ....

12.कृष्णा सोबती की कहानियों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना ....

–डॉ.गौकरण प्रसाद जायसवाल ....

13.जनपक्ष के कथाकार स्वयं प्रकाश ....

–डॉ.राजेश्वरी. के. ....

14.ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु योजनाएं ....

–सुरभि प्रोफेसर(डा0)मनोज कुमार मिश्र ....

15.अज्ञेय के उपन्यास में मृत्यु बोध संदर्भ : 'अपने–अपने अजनबी' ....

–घनश्याम कुमार भारती ....

16.नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि : संदर्भ 'कविता के नए प्रतिमान' ....

–डॉ.राजाराम बनर्जी ....

17.नवें दशक के बाद के हिन्दी उपन्यास और कृषक आत्महत्याएं ....

–सुप्रिया द्विवेदी ....

18.भुंजिया जनजाति की जन्म संस्कार में हो रहे परिवर्तन का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (छत्तीसगढ़ के गरियाबंद जिला के विशेष संदर्भ में) ....

[illegible] विकलांगता अधिकार आंदोलन [illegible] महिलाओं [illegible] विकलांगता अधिकार आंदोलन [illegible] विकलांग महिलाओं को [illegible]"

अनुसंधान का उद्देश्य: (1) दिव्यांगों के सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एवं शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना (2) दिव्यांग पुरुषों के तुलना में दिव्यांग महिलाओं में वैयक्तिक विघटन के दर का अध्ययन करना (3) अशिक्षित एवं शिक्षित दिव्यांगों में वैयक्तिक विघटन की दर का तुलनात्मक अध्ययन करना (4) शासन द्वारा संचालित दिव्यांगों के लिए कौशल आधारित व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रति जागरूकता एवं बाधाओं का अध्ययन करना (5) शासकीय एवं गैर-शासकीय विशिष्ट विद्यालयों की वर्तमान स्थिति, कार्यप्रणाली एवं आवश्यकता का अध्ययन करना।

अनुसंधान का प्रारूप एवं प्रविधि:

1-अध्ययन का क्षेत्र: प्रस्तावित अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य के महराजगंज जनपद का फरेंदा तहसील के अन्तर्गत आने वाले ग्रामीण क्षेत्र है। [illegible]

2-अध्ययन का प्रारूप: [illegible]

निदर्शन: [illegible]

तथ्य संकलन के स्रोत: [illegible]

[illegible]

अध्ययन उपकरण: [illegible]

दिव्यांगता अभिशाप नहीं वरदान– [illegible]

ड्राइवर से डॉ. एवेरेस्ट तक का सफर– [illegible]

[illegible] 2012 [illegible] 2012 [illegible] 2013 [illegible] 2014 [illegible] 2015 [illegible] 2016 [illegible] 2018 [illegible]"

निष्कर्ष: [illegible]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

(1)Hans,Asha and Patri,Annie(2003). Women, Disability and Identity New Delhi: Sage Publication

(2)Bowe, F. (1984). Disabled women in America: A statistical report drawn from census data. Washington, DC: President's Committee on Employment of the Handicapped.

(3)Rawat, H.K. (2002): Encyclopedia Of Sociology. Jaipur, Rawat Publishers

[illegible] www.rehabcouncil.nic.in

(5)The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act. 1995. Available from: https://www.disabilityaffairs.gov.in/upload/uploadfiles/files/PWD_Act.pdf

[illegible] www.disabilityaffairs.gov.in

(7)Deegan, M. J., & Brooks, N. A. (Eds.) (1985). Women and disability: The double handicap. New Brunswick, NJ: Transaction Books.

(8)Shaul, S., Dowling, P. J., & Laden, B. F. (1985). Like other women: Perspectives of mothers with physical disabilities. In M. J. Deegan & N. A. Brooks (Eds.), Women and disability: The double handicap. New Brunswick, NJ: Transaction Books.

ISSUE-37 | VOL-4 | IJIIF Impact-8.712 |
Open Transparent PEER Reviewed &Refereed Resear

3. "विकलांगता अभिशाप नहीं वरदान है" ग्रामीण दिव्यांग महिलाओं के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन

-[1]ज्योति यादव [2]प्रो. (डॉ.) अर्चना सिंह
[1]शोध छात्रा, [2]शोध पर्यवेक्षिका
समाजशास्त्र विभाग, दिग्विजय नाथ पी.जी.कॉलेज,गोरखपुर
सम्बद्ध- दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर

प्रस्तावना–दिव्यांग समाज का वह वर्ग है जो प्राकृतिक कारणों से अथवा दुर्घटनावश शारीरिक और मानसिक रूप से अन्य व्यक्तियों से भिन्न तथा प्रायः विभिन्न असमानताओं का शिकार रहा है और व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही स्तर पर उपेक्षा का शिकार रहा है दिव्यांग समाज भारतीय समाज का अभिन्न अंग रहा है। पहले इन्हें भले ही दया एवं सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता था परंतु आज दिव्यांग के प्रति लोगों की धारणा बदल गई है। आज दिव्यांग होना अभिशाप नहीं है और न ही व्यक्ति का उसके पूर्व जन्मों का फल माना जाता है। अब दिव्यांग लोगों के प्रति अपनी सोच को बदलने का समय आ गया है। दिव्यांगों को समाज की मुख्यधारा में तभी शामिल किया जा सकता है जब समाज इन्हें अपना हिस्सा समझे दिव्यांगता से ग्रस्त लोगों के मजाक बनाना, उन्हें कमजोर समझना और उनको दूसरों पर आश्रित समझना एक भूल और सामाजिक रूप से एक गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार है। जो लोग किसी दुर्घटना या प्राकृतिक आपदा का शिकार हो जाते हैं अथवा जो जन्म से ही दिव्यांग होते हैं उनके बारे में हमें यह समझना होगा की उनका जीवन भी सामान्य व्यक्ति की तरह है और वे अपनी कमजोरियों को अपनी ताकत बनाकर आगे बढ़ सकते हैं।दिव्यांगजन को हमारे अवसर का उपहास चाहिए।/मिले इन्हें अधिकार समान दया नहीं सम्मान चाहिए।

समस्याएँ और चुनौतियाँ–दिव्यांग व्यक्ति समाज के सबसे उपेक्षित वर्गों में से एक है। विकलांगता शब्द को एक सामाजिक कलंक के रूप में देखा जा रहा है जिसके अनुसार माता-पिता अपने बच्चों पर शर्म महसूस करते हैं और वह डर के मारे उन्हें से अधिकांश सार्वजनिक स्थानों पर असहज महसूस करते हैं। सामाजिक संबंधों की कमी के साथ-साथ शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्ति तनाव का शिकार होता है। ऐसे व्यक्ति को कई स्थितियों में अनिश्चितता और असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। दिसम्बर 2015 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विकलांगों को दिव्यांग कहने की अपील की थी। जिसके पीछे उनका तर्क था कि शरीर के किसी अंग से लाचार व्यक्तियों में ईश्वर प्रदत्त कुछ खास विशेषताएँ होती है। विकलांग शब्द उन्हें हतोत्साहित करता है। प्रधानमंत्री के आह्वान पर देश के लोगों ने विकलांगों को दिव्यांग तो कहना शुरू कर दिया लेकिन लोगों का उनके प्रति नजरिया आज भी नहीं बदल पाया है। आज भी समाज के लोगों द्वारा दिव्यांगों को दयनीय दृष्टि से ही देखा जाता है। भले ही देश में अनेकों दिव्यांगों ने विभिन्न [illegible]

में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया हो मगर लोगों का उनके प्रति वही पुराना नजरिया बरकरार है।संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1992 में हर वर्ष 3 दिसम्बर को अंतर्राष्ट्रीय दिव्यांग दिवस के रूप में मनाने घोषणा की गयी। इसका उद्देश्य समाज के सभी क्षेत्रों में दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों को बढ़ावा देना और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में दिव्यांग लोगों के बारे में जागरूकता बढ़ाना था। मगर आज के समय में भी अधिकतर लोगों को तो इस बात का भी पता नहीं होता है कि उनके घर के आस-पास कितने दिव्यांग रहते हैं, उन्हें समाज में बराबरी का अधिकार मिल रहा है कि नहीं। किसी को इस बात की कोई फिक्र नहीं है। यह एक कड़वी सच्चाई है कि भारत में दिव्यांग आज भी अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए दूसरों पर आश्रित है।

भारत में दिव्यांगता की स्थिति–2011 की जनगणना का अनुमान है कि भारत में दिव्यांग लोगों की संख्या 2.68 करोड़ (जनसंख्या का 2.2) के करीब है। भारत में महिलाओं की तुलना में पुरुषों का एक उच्च अनुपात विकलांग था, एवं शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में विकलांगता अधिक प्रचलित थी।

साहित्य की समीक्षा–विकलांगजन अधिनियम 1995 के कार्यान्वयन के लिए विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों विभागों, राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों, स्थानीय निकायों सहित संबंधित सरकारों द्वारा निम्नलिखित एक बहु-क्षेत्रीय एवं सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है- •दिव्यांगजनों के अधिकारों के संरक्षण और सहभागिता के लिए समान अवसर देने तथा जो व्यक्ति 40 प्रतिशत या उससे अधिक विकलांग है, उन्हें चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा प्रमाणित किया जाना अधिनियमित किया गया है। इसके अंतर्गत दृष्टिहीनता, दृष्टिबाधिता, श्रवण बाधा में कमी, चलनक्रिया बाधिता आदि शामिल हैं दिव्यांगजनों व्यक्तियों को गैर-विकलांग व्यक्तियों की तरह समान अवसर का अधिकार और कानूनी अधिकारों की सुरक्षा का अधिकार दिया गया है, उनके कार्यों में गैर-विकलांग व्यक्तियों के बराबर पूर्ण भागीदारी का अधिकार दिया गया है। पहली बार भाषण और भाषा विकलांगता और विशिष्ट अधिगम विकलांगता को जोड़ा गया है। एसिड अटैक पीड़ितों को शामिल किया गया है। बौनापन, पेशी दुष्पोषण को विशिष्ट विकलांगता के अलग वर्ग के रूप में इंगित किया गया है। विकलांगों की नई श्रेणियों में रक्त विकार, थैलेसीमिया, हीमोफीलिया और सिकल सेल रोग अन्य रोग भी शामिल किये गये हैं इस अधिनियम में कुल दिव्यांगताओं को 21 प्रकारों में विनिर्दिष्ट श्रेणि में विभाजित किया गया है।

गुल एवं खालिद (1995), यद्यपि अपने बच्चों की एकमात्र कार्यवाहक पोषण करने के रूप में माँ की एक परंपरागत छवि समाज में एक विशेष निश्चित स्थान रखती है। यह छवि समाज में अभी भी केन्द्र बिंदु के रूप में स्वीकार की जाती है। चूँकि समाज में विकलांग महिलाओं को आश्रित के रूप में देखा जाता है और देखभाल की आवश्यकता होती है। इसलिए कई लोग के लिए यह कल्पना करना मुश्किल है कि विकलांगता से पीड़ित एक माँ देखभाल और पोषण वाली सहानुभूति का या पालन पोषण कैसे करेंगी [illegible] देखने को मिल है कि जब विकलांग महिलाएं माँ बन जाती है तो वे कई कठिनाइयों का सामना करती है क्योंकि गैर-विकलांग दुनिया मानती है कि विकलांगता उन्हें माँ बनने के लिए अयोग्य बनाती है। यही कारण है कि कई विकलांग महिलाएं समाज के समक्ष अपने बच्चे की कस्टडी इसलिए खो देती है क्योंकि वे उनका पालन पोषण नहीं कर पाती केवल इस धारणा पर कि उनमें एक विकलांगता है (ओल (1984), "शिक्षा तक पहुँच अभी भी विकलांग लोगों की एक बड़ी समस्या बनी हुई है। जब शिक्षा ग्रहण करनी है तो विकलांग पुरुषों और विकलांग महिला दोनों की तुलना में विकलांग महिलाओं की शिक्षा की रिपोर्ट निराशा दर यह प्रस्तुत करती है। विकलांग महिलाओं में 5 प्रतिशत ऐसी महिलाएं हैं जिनकी शिक्षा कक्षा आठवीं से कम है। गैर-विकलांग महिलाओं की तुलना में विकलांग महिलाओं की औपचारिक शिक्षा प्राप्त कम है। जैसे- लगभग 16 विकलांग महिलाएं 21 गैर-विकलांग महिलाएं और 28 विकलांग पुरुषों के कॉलेज की शिक्षा ग्रहण करने की संभावना है।[7]

बर्टी और जॉनसन (1996), "पारंपरिक रूप से विकलांग बच्चों को अलग-अलग स्कूलों एवं कक्षा में शिक्षित किया जाता रहा है उनकी शिक्षा नियमित शिक्षा के क्षेत्र में बहुत कम हुई है परंतु पिछले कुछ दशकों में विकलांग छात्रों के लिए एकीकृत शिक्षा की दिशा में प्रगति देखी गई है जब कि ज्यादातर विकलांग बच्चों की शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र सरकार की पहल से आरम्भ है। वर्तमान समय में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए विशेष शिक्षा एवं विशेष विद्यालय प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शासन द्वारा एवं गैर-शासकीय संगठन द्वारा संचालित किए जाते रहे हैं। शोधकर्ताओं ने अनुमान लगाया है कि विशेष शिक्षा के कारण विकलांग बच्चों को आसानी से पहचाना जा सकता है। कुछ लेखकों ने यह भी माना है कि विशेष शिक्षा की व्यवस्था विकलांग लड़कों के साथ भेदभाव दर्शाता है और उन्हें नियमित शिक्षा के लाभों से वंचित करता है। विशेष शिक्षा के कारण आसानी से विकलांगता का लेबल लगा दिया जाता है और सामान्य बच्चों से अलग कर दिया जाता है। जिससे विकलांग बच्चों में समाज के प्रति नकारात्मक व्यवहार उत्पन्न होने लगता है। दूसरी तरफ विशेष शिक्षा में लड़कों की अधिकता इस दृष्टि को दर्शाता है कि विकलांग लड़कियों की तुलना में विकलांग लड़कों को शिक्षित करना प्राथमिकता के रूप में माना जाता है।[8] वेल्स और बुश (1985) विकलांगता अधिकार आंदोलन ने विकलांग महिलाओं के लिए महत्व के मुद्दों को नजरअंदाज कर दिया है और विकलांग महिलाओं ने इसके पुरुष वर्चस्व और पुरुष अभिविन्यास के बारे में शिकायत की है। वेल्स और बुश का मानना

7:12 6%
VETHIKA 2023.pdf

Vol-14, Issue - 01
September, 2023

ISSN- 2231-1130

VEETHIKA

A Multidisciplinary Peer-Reviewed/Refereed
Research Journal of Arts,
Humanities and Social Sciences

Vol - 14, Issue -01
September-2023

ISSN-2231-1130

VEETHIKA

A Multidisciplinary Peer Reviewed/Refereed Research
Journal of Arts, Humanities and Social Sciences

परिस्थितियों के अनुसार ऐसे मार्ग की आवश्यकता थी जो भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित मूल्यों पर आधारित हो, यहां की सांस्कृतिक विविधता में अंतर्भूत एकता को सुदृढ़ कर सके, राष्ट्र के विकास में समर्थ हो। ऐसी परिस्थिति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के विचार को राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया जो कर्म चेतना से युक्त, राष्ट्रीय संस्कृति के अनुकूल, शाश्वत संपूर्णता की प्राप्ति में सहायक है।

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130
●●●●VEETHIKA●●●

जीवन परिचय

समाज में तीन प्रकार के व्यक्तित्व होते हैं एक जन्म से महान, दूसरे जिन्हें शिक्षण प्रशिक्षण से महान बनाया जाता है एवं तीसरे जो अपने कर्तव्य बल पर महान बने। अपने समय के सबसे बड़े संगठनकर्ता एवं दार्शनिक बने। गांधी नेहरू और पटेल के पश्चात यदि किसी का नाम आता है तो वह दीनदयाल उपाध्याय जी का ही आता है (अनिल दत्त मिश्र, 2019)

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के नगला चंद्रभान नामक स्थान पर 25 सितंबर 1916 को हुआ था। 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' की तर्ज पर इनकी बुद्धि की कुशाग्रता बचपन से ही प्रदर्शित होने लगी थी। परंतु विधाता द्वारा समय - समय पर इनकी परीक्षा ली जाती रही और एक-एक कर उनके सभी अपने उनका साथ छोड़कर जाने लगे। पहले पिता, फिर माता, नाना ,वात्सल्य से परिपूर्ण नानी और यहां तक की भाई भी कम उम्र में ही साथ छोड़कर गोलोकवासी हो गए। साधारण मनुष्य इस परिस्थिति में बिखर जाता, परंतु दीनदयाल जी को शायद परमात्मा ने विशेष कार्य के गढ़ा था। परिस्थितियों से हार माने बिना, तमाम झंझावतों के बीच इन्होंने अपनी शिक्षा अनवरतजारी रखी। मैट्रिक की परीक्षा गोल्ड मेडल के साथ उत्तीर्ण करने के उपरांत इंटरमीडिएट की परीक्षा में भी पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। बी.ए. की परीक्षा कानपुर के S. D. कॉलेज से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। M.A. की परीक्षा हेतु सेंट जॉन्स कॉलेज आगरा में प्रवेश लिया परंतु बीमार बहन की मृत्यु के कारण परीक्षा में सम्मिलित ना हो सके।

कानपुर आगमन पंडित जी के जीवन का एक मुख्य पड़ाव रहा। यहीं से इनके जीवन की दिशा निर्धारित हो रही थी। बालूजी महाशब्दे की प्रेरणा से यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए तथा संघ के आजीवन प्रचारक बन गए। संघ के माध्यम से ही पंडित जी का भारतीय राजनीति में पदार्पण हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई तो इसमें अति महत्वपूर्ण दायित्व महामंत्री पद पंडित दीनदयाल जी के कंधों पर दिया गया। पंडित जी ने संघ के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने हेतु पूरे भारत का भ्रमण किया। अपने प्रवास के दौरान उन्होंने भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधने हेतु एकात्म मानव दर्शन की अवधारणा का प्रतिपादन किया। सन् 1952 में जनसंघ की स्थापना से लेकर से सन् 1967 तक पंडित जी महामंत्री के पद के दायित्व का भली प्रकार निर्वहन करते रहे। सन् 1967 में कालीकट के अधिवेशन में भारतीय जनसंघ का अध्यक्ष एकमत से चुना गया। अध्यक्ष के रूप में जनसंघ को बुलंदियों तक पहुँचाने का स्वप्न देख रहे पंडित दीनदयाल जी की मात्र 43 दिनों बाद हत्या कर दी गई और भारत माँ ने अपना एक लाल सदा के लिए खो दिया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने पत्रकारिता तथा साहित्य सृजन का कार्य सफलतापूर्वक किया। अपने जीवन का प्रत्येक क्षण इन्होंने समाज सेवा में लगाया। विश्व भर में चलने वाले आज के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक वादों से ऊपर उठकर इन्होंने एक अनूठी व सारपूर्ण एकात्म मानव दर्शन की अभिनव एवं व्यवहारवादी परिकल्पना दी जिसमें मानव के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया है। यह एक ऐसा दर्शन है जिसमें दृढ़ चरित्र, शरीर व मन की एकात्मता एवं धर्म के शाश्वत मूल्यों को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है।

दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद

भारत में दर्शन का उद्गम असंतोष या अतृप्ति से माना जाता है। जब मनुष्य वर्तमान से असंतुष्ट होकर श्रेष्ठतर की खोज करता है, यही खोज दार्शनिक गवेषणा कहलाती है। एकात्म मानव दर्शन की उत्पत्ति भी तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों में असंतुष्टि का ही

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130
●●●●VEETHIKA●●●

परिणाम थी। नव स्वतंत्र भारत के समक्ष विश्व की दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं पूंजीवाद और साम्यवाद में से किसी एक को चुनने की चुनौती थी। यह दोनों ही विचारधारा उनके उद्भव राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुए थी। जो भारत की संस्कृति, आध्यात्मिकता एवं परम्पराओं आदि के कदापि समीचीन नहीं थी। दोनों ही विचारधाराओं से असंतुष्ट होकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय जन-जीवन को उनके प्राचीन शाश्वत मूल्य के पथ पर चलने का आह्वान किया तथा पूंजीवाद और साम्यवाद के स्थान पर एकात्म मानव दर्शन सामने रखा। "हम न पूंजीवाद को मानते हैं न समाजवाद को। हम तो एकात्मवाद को मानते हैं। एकता-संपत्ता को मानते हैं। हम में एक आत्मा है। इस एकात्मय में दैवी संपत्ति है। हम दैवी भावों को प्रमुख मानकर,

- Dr. Paul Mathew
5 Thematic analysis of Jayanta Mahapatra's Poems 38-44
- Dr. Divya Mishra
6 Changing Perspectives among In-Service Teachers toward Professionalism: A Self- Driven Approach to 21st-Century Competency 45-57
- Alka, Dr.Rinkal Sharma
7 Domestic Violence during COVID-19: Recognize Patterns, Perception and Awareness against Females in Kanpur City 58-73
- Dr. Shipra Srivastava
8 A Study of Academic Resilience among Students: A Systematic Review 74-80
- Manisha Barauniya
9 A Study of Professional Competence and Mental Health of Primary and Upper Primary Level Teachers with Some Selected Variables 81-88
- Dr. Ram Dhani Singh, Prof. Dhananjai Yadav
10 Blended Learning: The Future of Teaching and Learning Process 89-97
- Dr. Kotra Balayogi
11 Gender and Socio- Cultural Transformation: A Sociological Study 98-108
- Dr. Balak Ram Rajvanshi
12 Vocational Interest: An Analytical Study of a Survey of Related Literature 109-114
- Rashi Rastogi
13 Reformist cultural perception & values that shaped post liberalization economic institutions in India 115-129
- Dr. Ipsit Pratap Singh, Jwalant Bhawsar, Sorabh Shrivastava
14 The Impact of Educational Background and Locality Context on Teaching Competency among Student-Teachers 130-136
-Veer Pratap Singh, Pooja Singh

15 Salient Features of New Education Policy 2020 and Its Impact on Higher Education System of India 137-144
- Jeetendra Kumar Yadav
16 पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन में वर्णित शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में उपादेयता 145-150
- निधि राय
17 विद्यार्थियों की आधुनिकता के प्रति अभिवृत्ति एवं शैक्षिक समायोजन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन 151-156
-डॉ मंजुल त्रिवेदी
18 जेकृष्णमूर्ति का शैक्षिक अवदान, 157-160
- डॉममता सिंह,
19 रूसो के प्रकृतिवादी विचारधारा की आधुनिक सन्दर्भ में उपादेयता 161-166
- ऐश्वर्या सिंह
20 भारत-चीन के मध्य वैश्विक प्रतिस्पर्धा (ब्रिक्स और जी-20 के विशेष संदर्भ में) 167-169
- प्रो0 (डा0) डी0सी0 कटियार
21 उपनिषद् वाङ्मय में काव्यतत्त्व 170-172
- डॉ0 योगेन्द्र कुमार सिंह
22 हिंदी संत परंपरा और रैदास 173-175
- प्रोफेसर अलका पांडे
23 अमीर खुसरो और उनका खालिकबारी 176-182
- शिवम पांडेय, डॉ प्रणव कुमार मिश्र

1.0 Study Habits Among Male and Female Students at Post Graduate Level

- **Dr. Shikha Tiwari**, Assistant Professor, Department of Education, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow.

Email: [illegible]@gmail.com

में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खंड 12)

उपाध्याय जी के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक के रूप में कार्य करता है और वह नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से प्राप्त ज्ञान की निधि का हस्तांतरण करता है। इस प्रकार प्राप्त पूंजी में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभव के अनुसार वृद्धि करनी चाहिए जिससे यह ज्ञान निधि और भी समृद्ध होती जाए। शिक्षा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संग्रहित संस्कार, संस्कृति, कला, नैतिकता, परंपराएं हस्तांतरित होता है।इसके द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं परंपराओं से परिचित होता है जिससे कि वह अपने समाज के योग्य नागरिक के रूप में विकसित होता है।

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

दीनदयाल जी भारत की समस्या का सर्व प्रमुख कारण बेरोजगारी को मानते थे, जिसके समाधान हेतु वे शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की मांग कर रहे थे। बेरोजगारी की समस्या अपने आप में कई समस्याओं की जननी है। अतः शिक्षा नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि शिक्षित युवक बाबूगिरी की ओर ना दौड़ कर स्वयं अपने लिए रोजगार का सृजन कर सके। उनके हाथ में कुछ ऐसा हुनर दिया जाना चाहिए जिससे कि वे जीविकोपार्जन कर सके। "पढ़े लिखे लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएं जहां वे शिक्षा के साथ-साथ काम भी कर सकें। यह केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय, खंड 2)

शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास हेतु सबसे शक्तिशाली माध्यम है। हमारी प्राचीन संस्कृति उद्घोष करती है कि विद्यावान व्यक्ति विनयशील होता है, विद्या ददाति विनयं। परंतुजोशिक्षा बालक सुसंस्कृत ना बनाकर केवल आजीविका निर्वहन के योग्य बनाती है ऐसी शिक्षा बालक, समाज एवं राष्ट्र सभी के लिए हानिकारक है। हमारी शिक्षा पद्धति वसुधैव कुटुंबकम की हमारी प्राचीन संस्कृति को आत्मसात् करने वाली होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति पुरुषार्थ चतुष्टय की भावना को लेकर चलती है - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए जिससे कि यह चारों पुरुषार्थ संतुष्ट हो सके।

वर्तमान परिदृश्य

दुर्भाग्यवश वर्तमान शिक्षा पद्धति अर्थ प्रधान होकर रह गई है जिससे मनुष्य एवं पशु में कोई अंतर नहीं रह गया है। मनुष्य को मनुष्य बनाए रखने के लिए शिक्षा का केंद्र सिर्फ अर्थ ना होकर चारों पुरुषार्थ होने चाहिए। हमारे सांस्कृतिक मूल्य हमें एकात्म का भाव सिखाते हैं। प्राचीन काल में गुरु शिक्षा देते समय अपने विद्यार्थियों से किसी भी प्रकार का भेदभाव न रखकर एकात्म भाव रखते थे। एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति का भाव रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया आगे बढ़ती थी। संस्कार एवं मूल्य शिक्षा के मुख्य मूल तत्व थे। यही संस्कार एवं मूल्य हमारी संस्कृति को विश्व में श्रेष्ठतम बनाते थे एवं हमारा राष्ट्र विश्व गुरु के पद को सुशोभित करता था ,परंतु दासता के लगभग 1200 वर्षों ने हमारी मानसिकता को इस प्रकार बदल दिया कि हम अभी भी उसी हीन भावना के शिकार हैं जो परतंत्रता ने हमारे मन में भर दी थी। आज भी हमारे समाज में अंग्रेजी भाषा जानने वाला अपने समकक्ष अंग्रेजी न जानने वाले से श्रेष्ठ समझा जाता है।साथ ही अंग्रेजी ना जानने वाला स्वयं को निम्नतर समझता है। यह हीनता की भावना, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा पर गर्व न कर सकने का भाव हमें परतंत्रता के पक्ष प्रभाव के स्वरूप में मिला है। इस भाव का मूल कारण हमारी वर्तमान शिक्षा का मूल्यविहीन होना है। आज पश्चिमी का अंधानुकरण करना ही आधुनिकता की पहचान बन गया है। निश्चय ही किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के लिए यह सुखद भविष्य का संकेत नहीं है।

आज की भौतिकवादी सोच ने जीवन की समग्रता को बढ़ावा ना देकर केवल एक पक्ष का विकास किया है। परिणामस्वरूप भौतिक संस्कृति एवं मूल्य संस्कृति के बीच खाई गहरी होती जा रही है। जो किसी भी समाज के लिए उत्तम स्थिति नहीं कही जा सकती। वसुधैव कुटुंबकम की भावना वाले इस देश में आज क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, जल विवाद जैसी समस्या विद्यमान है तो इसका एक मात्र कारण 'अयं निजः परो वेति' का भाव है। यह मार्ग विकास का नहीं बल्कि विनाश की ओर अग्रसर करने वाला मार्ग है। आज समस्त विश्व के समक्ष पहचान का संकट मंडरा रहा है। अमेरिका जैसे देश में विद्यार्थी अपने साथियों की निर्मम हत्या कर दे रहे हैं। हमारे देश में भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। हाल ही में एक ऐसी घटना देखने को मिली जिसमें 1 दिन के अवकाश की इच्छामात्र से एक मासूम की जान उसी विद्यालय के छात्र ने ले ली। इस प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति के लिए कहीं न कहीं हमारी शिक्षा पद्धति भी जिम्मेदार है। छात्रों में नैतिक मूल्य, वृत्त की शुद्धता पर जोर ना देकर शिक्षा वित्त प्रधान हो गई है।

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

●●●●VEETHIKA●●●

आज की शिक्षा सामाजिक हित को गौड़ मानकर व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि मानने वाली है। अधिक से अधिक धन कमाकर सुख, ऐशो -आराम की प्राप्ति की इच्छा की परिणति पारिवारिक विघटन ,चारित्रिक दुर्बलता एवं हिंसक प्रवृत्ति आदि के रूप में हो रहे हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान परिस्थितियों में यदि हमें इन दुष्प्रवृत्तियों से नई पीढ़ी का संरक्षण कर एक स्वस्थ समाज की संरचना करनी है तो इसके लिए हमें भारतीय मूल्यों एवं संस्कारों से युक्त एकात्म दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली को अपनाने की ओर अग्रसर होना ही होगा।

सकती। वसुधैव कुटुम्बकम की भावना वाले इस देश में आज क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, जल विवाद जैसी समस्या विद्यमान है तो इसका एक मात्र कारण 'अयं निज: परो वेति' का भाव है। यह मार्ग विकास का नहीं बल्कि विनाश की ओर अग्रसर करने वाला मार्ग है। आज समस्त विश्व के समक्ष पहचान का संकट मंडरा रहा है। अमेरिका जैसे देश में विद्यार्थी अपने साथियों की निर्मम हत्या कर दे रहे हैं। हमारे देश में भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। हाल ही में एक ऐसी घटना देखने को मिली जिसमें 1 दिन के अवकाश की इच्छामात्र से एक मासूम की जान उसी विद्यालय के छात्र ने ले ली। इस प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति के लिए कहीं न कहीं हमारी शिक्षा पद्धति भी जिम्मेदार है। छात्रों में नैतिक मूल्य, वृत्त की शुद्धता पर जोर ना देकर शिक्षा वित्त प्रधान हो गई है।

आज की शिक्षा सामाजिक हित को गौड़ मानकर व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि मानने वाली है। अधिक से अधिक धन कमाकर सुख, ऐशो –आराम की प्राप्ति की इच्छा की परिणति पारिवारिक विघटन ,चारित्रिक दुर्बलता एवं हिंसक प्रवृत्ति आदि के रूप में हो रहे हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान परिस्थितियों में यदि हमें इन दुष्प्रवृत्तियों से नई पीढ़ी का संरक्षण कर एक स्वस्थ समाज की संरचना करनी है तो इसके लिए हमें भारतीय मूल्यों एवं संस्कारों से युक्त एकात्म दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली को अपनाने की ओर अग्रसर होना ही होगा। निश्चय ही एकात्म मानव दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाते हुए छात्रों में भारतीय होने का गर्व पैदा करने के साथ ही ऐसे भाव प्रदान करेगी जिससे वे मानवाधिकारो, स्थाई विकास एवं वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध होंगे तथा सही मायने में वैश्विक नागरिक बन सकेंगे एवं हमारा देश निश्चय ही ज्ञान की महाशक्ति के रूप में स्थापित हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 12 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या 50
मिश्र अनिल दत्त, सिंह पद्म, गुप्ता जय (2019). दीनदयाल उपाध्याय एक अध्ययन, कौन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली
शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 11 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या पन्द्रह वही, पृष्ठ संख्या उन्नीस
मिश्र कौशल किशोर (2021). पं०दीनदयाल उपाध्याय का सांस्कृतिकचिंतन, के के पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 53
शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खण्ड 12 ,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ संख्या 90-91
शर्मा महेश चंद्र (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खंड 2, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,पृष्ठ 136

****

17.0 विद्यार्थियों की आधुनिकता के प्रति अभिवृत्ति एवं शैक्षिक समायोजन के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

- **डॉ मंजुल त्रिवेदी**,असिस्टेंट प्रोफेसर ,शिक्षाशास्त्र विभाग, वी एस एन वी पी जी कालेज, लखनऊ
  ई.मेल-manjultrivedi.lko@gmail.com

एकात्मता एवं धर्म के शाश्वत मूल्यों को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है।

दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद

भारत में दर्शन का उद्गम असंतोष या अतृप्ति से माना जाता है। जब मनुष्य वर्तमान से असंतुष्ट होकर श्रेष्ठतर की खोज करता है, यही खोज दार्शनिक गवेषणा कहलाती है। एकात्म मानव दर्शन की उत्पत्ति भी तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों में असंतुष्टि का ही

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

परिणाम थी। नव स्वतंत्र भारत के समक्ष विश्व की दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं पूंजीवाद और साम्यवाद में से किसी एक को चुनने की चुनौती थी। यह दोनों ही विचारधारा उनके उद्भव राष्ट्र की परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुए थी। जो भारत की संस्कृति, आध्यात्मिकता एवं परम्पराओं आदि के कदापि समीचीन नहीं थी। दोनों ही विचारधाराओं से असंतुष्ट होकर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय जन–जीवन को उनके प्राचीन शाश्वत मूल्य के पथ पर चलने का आह्वान किया तथा पूंजीवाद और साम्यवाद के स्थान पर एकात्म मानव दर्शन सामने रखा। "हम न पूंजीवाद को मानते हैं न समाजवाद को। हम तो एकात्मवाद को मानते हैं। एकता–संघता को मानते हैं। हम में एक आत्मा है। इस एकात्म्य में दैवी संपत्ति है। हम दैवी भावों को प्रमुख मानकर, आधार मानकर प्रगति करते हैं।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांमय खण्ड 11)। एकात्म मानव दर्शन का आधार भारतीय संस्कृति की एकात्मवादी प्रवृत्ति है, जो परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान पर अनुकूलन एवं सहयोग के आधार पर चलती है। यह जीवन की विभिन्न संस्थाओं और समाज के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद को स्वीकारते हुए उनके प्रत्येक स्तर पर समानता की खोज करती है और उनमें समन्वय स्थापित करने का प्रयास करती है। एकात्म मानव दर्शन ना केवल भारतीय संस्कृति का युगानुकूल विवेचन है बल्कि वैश्विक विचारों के लिए पूरक भारतीय चिंतन भी है।पूंजीवादी आर्थिक चिंतन मनुष्य को एक धन लोलुप प्राणी मानकर चलता है जो सदैव दूसरे पर नियंत्रण तथा एकाधिकार द्वारा मनमानी कीमत वसूलने का साधन मानता है, जबकि एकात्म मानव स्वयं समाज का सदस्य है। एकात्म मानव को सबके सुख में ही अपना सुख मिलता है। "एकात्म मानव विचार भारतीय और भारत–वाह्य सभी चिंतन धाराओं का सम्यक आकलन करके चलता है। उनकी शक्ति एवं दुर्बलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव को अब तक के उसके चिंतन,अनुभव और उपलब्धि की मंजिल से आगे बढ़ा सके।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांमय खण्ड 11)

एकात्म मानव दर्शन में दो मुख्य शब्द एकात्म और मानव है अर्थात् यह ऐसी विचारधारा है जिसका केंद्र मानव है। यह दर्शन मानव को एकात्म मानता है। एकात्म ना बांटी जा सकने वाली इकाई को कहते हैं। इस दर्शन के अनुसार व्यक्ति व समाज को अलग नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति समाज का एक अंग है। अतः वह केवल 'मैं' तक सीमित नहीं रह कर 'हम 'से संबंध रखता है। यह एक ऐसी विचारधारा है जिसके केंद्र में व्यक्ति होता है ,व्यक्ति से घर परिवार ,घर परिवार से समाज ,फिर समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व और विश्व से अनंत ब्रह्मांड जुड़ा होता है। इसलिए एक के विकास से ही दूसरे का विकास संभव है।

एकात्म मानववाद विचारधारा में व्यक्ति को केंद्रीय ईकाई माना जाता है । पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना है कि व्यक्ति केवल शरीर नहीं है अपितु शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि का समुच्चय है जिसके कारण उसमें मैं के स्थान पर हम का भाव परिलक्षित होता है। इनका मानना है कि व्यक्ति के चरित्रवान संगठित तथा सुसंस्कृत होने पर ही सनातन सत्य की प्राप्ति संभव है। भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थ धर्म,अर्थ एवं काम और मोक्ष है। इन पुरुषार्थ चतुष्टय से संयुक्त मानव संपूर्ण समाज का एक साथ प्रतिनिधित्व करता है। एकात्म मानववाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मंडलाकृति द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। जिसके केंद्र में व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ा घेरा घर - परिवार, परिवार से जुड़ा घेरा समाज, राष्ट्र ,विश्व और अनंत ब्रह्मांड को अपने में समाए हुए है। अतः हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए जो अनेक समष्टि का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है।

राष्ट्र संबंधी विचार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन में राष्ट्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व के बारे में चिंतन किया गया है। इसके अनुसार हमारे राष्ट्र की अपनी एक प्रकृति, संस्कृति तथा जीवन मूल्य है जिसे इस देश ने परिवर्धित किया है। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति के साथ ही होने

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

वाला विकास यहां के लोगों के लिए सुखद एवं संतोषप्रद होगा।यूनान, रोम आदि प्राचीन राष्ट्र के उदाहरण द्वारा पंडित जी ने स्पष्ट किया कि कोई भी राष्ट्र मृतप्राय हो जाता है यदि वहां की संस्कृति नष्ट हो जाए। राष्ट्र कुछ व्यक्तियों का समूह अथवा भूमि का टुकड़ा मात्र नहीं है, बल्कि राष्ट्र की संस्कृति ही उसका प्राण तत्व है। पंडित जी के शब्दों में "संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है और कोई भी राष्ट्र तभी तक जीवित माना जा सकता है जब तक उसकी आत्मा उसके भीतर विद्यमान है। केवल वाह्य उपकरणों से राष्ट्र जीवित नहीं रहता।" (कौशल किशोर मिश्र, 2021)

पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण, आत्म विस्मृति एवं हीनता की भावना राष्ट्रीय विकास के लिए क्लेशमय सिद्ध होगी। आज

प्रतिनिधित्व करता है। एकात्म मानववाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मंडलाकृति द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। जिसके केंद्र में व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ा घेरा घर - परिवार, परिवार से जुड़ा घेरा समाज, राष्ट्र ,विश्व और अनंत ब्रह्मांड को अपने में समाए हुए हैं। अतः हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए जो अनेक समष्टि का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है।

राष्ट्र संबंधी विचार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन में राष्ट्र के स्वतंत्र व्यक्तित्व के बारे में चिंतन किया गया है। इसके अनुसार हमारे राष्ट्र की अपनी एक प्रकृति, संस्कृति तथा जीवन मूल्य है जिसे इस देश ने परिवर्धित किया है। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति के साथ ही होने

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

वाला विकास वहां के लोगों के लिए सुखद एवं संतोषप्रद होगा।यूनान, रोम आदि प्राचीन राष्ट्र के उदाहरण द्वारा पंडित जी ने स्पष्ट किया कि कोई भी राष्ट्र मृतप्राय हो जाता है यदि वहां की संस्कृति नष्ट हो जाए। राष्ट्र कुछ व्यक्तियों का समूह अथवा भूमि का टुकड़ा मात्र नहीं है, बल्कि राष्ट्र की संस्कृति ही उसका प्राण तत्व है। पंडित जी के शब्दों में "संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा होती है और कोई भी राष्ट्र तभी तक जीवित माना जा सकता है जब तक उसकी आत्मा उसके भीतर विद्यमान है। केवल वाह्य उपकरणों से राष्ट्र जीवित नहीं रहता।" (कौशल किशोर मिश्र, 2021)

पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण, आत्म विस्मृति एवं हीनता की भावना राष्ट्रीय विकास के लिए क्लेशमय सिद्ध होगी। आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक नागरिक स्वयं का एक राष्ट्र के रूप में आत्म अवलोकन करे, चिंतन करें एवं प्रत्यक्ष आचरण के लिए अग्रसर हो। एक नागरिक जब तक अपना आत्म साक्षात्कार नहीं करेगा, आत्म स्वरूप को नहीं पहचानेगा तब तक उसकी चेतना को जागृत नहीं किया जा सकता ,उसके शुभ-अशुभ गुणों का आह्वान नहीं किया जा सकेगा। परिणाम स्वरूप एक परिपूर्ण राष्ट्र निर्माण संभव नहीं हो सकेगा

शैक्षिक विचार

एकात्म मानव दर्शन के अनुसार शिक्षा द्वारा मूल तत्व की एकात्मता का ज्ञान कराया जाना चाहिए। जब समग्र सृष्टि का रचनाकार एक है तो निश्चय ही सृष्टि के प्रत्येक अंग का मूल तत्व एक ही होगा। हमारी शिक्षा समाज में भेद निर्माण करने वाली ना होकर एकात्म भाव का निर्माण करने वाली होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश वर्तमान भारत के पब्लिक स्कूल इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते। अतः शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। सभी शिक्षण संस्थाओं में गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जिससे मानव मात्र में एकात्मता का भाव उत्पन्न हो सके। पंडित दीनदयाल जी भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा पद्धति को राष्ट्र की उन्नति हेतु आवश्यक मानते थे।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो बालक की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक और सामंजस्य पूर्ण विकास करने में अपना योगदान देती है ।शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व का इस प्रकार विकास करती है जो उसे जीवन के कर्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वहन के लिए तैयार करता है। शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार एवं दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं संपूर्ण विश्व के लिए हितकर होता है। स्पष्टतया समाज एवं राष्ट्र की सेवा के लिए शिक्षा अनिवार्य है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार बच्चों की शिक्षा समाज के स्वयं के हित में है। शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। एकात्म मानव दर्शन के अनुसार संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र बिंदु मानव को मानकर उसके विकास हेतु शिक्षा की व्यवस्था समाज को करनी चाहिए। शिक्षा प्राचीन भारतीय गुरुकुल की भांति निःशुल्क होनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के हित के लिए कार्य करेगा। जो कार्य समाज के हित के लिए हो उसके लिए शुल्क लेना अनुचित है। "बच्चे को शिक्षा देना तो समाज के अपने ही हित में है। जन्म से तो मानव पशुवत् पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से तो वह समाज का अभिन्न घटक बनता है जो काम समाज के अपने हित में हो उसके लिए शुल्क लिया जाए यह तो उल्टी बात है।"(दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय खंड 12)

उपाध्याय जी के अनुसार समाज का प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक के रूप में कार्य करता है और वह नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से प्राप्त ज्ञान की निधि का हस्तांतरण करता है। इस प्रकार प्राप्त पूंजी में प्रत्येक व्यक्ति को अपने अनुभव के अनुसार वृद्धि करनी चाहिए जिससे यह ज्ञान निधि और भी समृद्ध होती जाए। शिक्षा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संग्रहित संस्कार, संस्कृति, कला, नैतिकता, परंपराएं हस्तांतरित होता है ।इसके द्वारा व्यक्ति अपनी संस्कृति एवं परंपराओं से परिचित होता है जिससे योग्य नागरिक के रूप में विकसित होता है।

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

●●●●VEETHIKA●●●

दीनदयाल जी भारत की समस्या का सर्व प्रमुख कारण बेरोजगारी को मानते थे, जिसके समाधान हेतु वे शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की मांग कर रहे थे। बेरोजगारी की समस्या अपने आप में कई समस्याओं की जननी है। अतः शिक्षा नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि शिक्षित युवक बाबूगिरी की ओर ना दौड़ कर स्वयं अपने लिए रोजगार का सृजन कर सके। उनके हाथ में कुछ ऐसा हुनर दिया जाना चाहिए जिससे कि वे जीविकोपार्जन कर सके। "पढ़े लिखे लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएं जहां वे शिक्षा के साथ-साथ काम भी कर सकें। यह केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए"

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

16.0 पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन में वर्णित शैक्षिक विचारों की वर्तमान समय में उपादेयता

• **निधि राय,** असिस्टेंट प्रोफेसर शिक्षाशास्त्र दिग्विजय नाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर उत्तर प्रदेश
ई.मेल- nidhirai1504@gmail.com

सारांश

सहस्र वर्षों की परतंत्रता का दंश झेलने के पश्चात नव स्वतन्त्र भारत को ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता थी जो उसके प्राचीन गौरवशाली अतीत की आधारशिला पर समृद्धिशाली भारत का निर्माण कर सके।अपनी बौद्धिक संपदा के संरक्षण के साथ ही व्यक्ति एवं राष्ट्र को एक सूत्र में पिरो सके। यह कार्य शिक्षा द्वारा किया जा सकता था परंतु शिक्षा नीति-नियंता भी उसी हीन भावना के शिकार थे जो अंग्रेजों ने भारतीयों में भर दी थी। परिणामस्वरूप मैकाले द्वारा दी गई शिक्षा पद्धति को ही अपनाया गया और भारतीय संस्कृति, परंपरा की पूर्ण रूप से अवहेलना हुई। जिसका दुष्परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं, जब हम पश्चिमी देशों के अनुगामी बनकर रह गए हैं। यदि हमें अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा पुनः हासिल करनी है तो हमारी शिक्षा पद्धति को हमारे प्राचीन आदर्शों पर आधारित करना होगा। अतः वर्तमान भारत राष्ट्र के उज्जवल भविष्य के लिए एक ऐसे वैचारिक दर्शन की आवश्यकता है जो राष्ट्रीय परिवेश के सर्वथा अनुकूल, सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से लाभकारी तथा राष्ट्र को परम वैभव तक पहुंचाने में समर्थ हो। हमारे पास वह वैचारिक धरोहर एकात्म मानव दर्शन के रूप में संकलित है। पं० दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानव दर्शन शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित, मानव प्रवृत्तियों का सूक्ष्म सार एवं संपूर्ण मानव को सुख समृद्धि के मार्ग पर ले जाने वाला शाश्वत दर्शन है। इस दर्शन के आधार पर नए समाज की रचना की आवश्यकता आज सर्वथा महसूस की जा रही है।

प्रमुख शब्दावली - एकात्म मानववाद, सर्पिलाकार मंडलाकृति, पुरुषार्थ

प्रस्तावना

सभ्यता के उषाकाल से ही भारत ने ज्ञान के महत्व को समझ लिया था। भारत ने धर्म और दर्शन के क्षेत्र में इतना विकास किया कि वह सहस्र शताब्दियों तक विश्व गुरु के रूप में प्रतिष्ठित रहा ,किंतु इतिहास ने भारत को एक परतंत्र राष्ट्र बना दिया, जिससे भारतीय बौद्धिक विरासत तथा भारतीय दर्शन के मूल तत्व को अप्रमाणित घोषित कर दिया गया। परतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत को एक दास की तरह शासक राष्ट्र की भाषा एवं संस्कृति को स्वीकार करनी पड़ी। तत्कालीन परिस्थितियों के वशीभूत होकर हम स्वयं अपनी भाषा ,संस्कृति और परंपराओं को भूलने लगे तथा पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने लगे। इस प्रकार भारतीय दर्शन तथा इतिहास ने अपने गौरवशाली अतीत को खो दिया।

उत्तम राष्ट्र का निर्माण कभी भी उधार की विचारधारा को अपनाकर नहीं हो सकता। "प्रत्येक देश की अपनी विशेष ऐतिहासिक सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति होती है और उस समय उस देश के जो भी नेता और विचारक होते हैं वह उस परिस्थिति में से देश को आगे बढ़ाने की दृष्टि से मार्ग निर्धारित करते हैं।" (दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वांग्मय, खंड 12)। अतः हमें भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ऐसे मार्ग की आवश्यकता थी जो भारतीय संस्कृति में अंतर्निहित मूल्यों पर आधारित हो, यहां की सांस्कृतिक विविधता में अंतर्भूत एकता को सुदृढ़ कर सके, राष्ट्र के विकास में समर्थ हो। ऐसी परिस्थिति में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद के विचार को राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया जो कर्म चेतना से युक्त, राष्ट्रीय संस्कृति के अनुकूल, शाश्वत संपूर्णता की प्राप्ति में सहायक है।

151 / 192

Issue-14; Vol.01, Sept. 2023
ISSN–2231-1130

●●●●VEETHIKA●●●

जीवन परिचय

समाज में तीन प्रकार के व्यक्तित्व होते हैं एक जन्म से महान, दूसरे जिन्हें शिक्षण प्रशिक्षण से महान बनाया जाता है एवं तीसरे जो अपने कर्तव्य बल पर महान बने। अपने समय के सबसे बड़े संगठनकर्ता एवं दार्शनिक बने। गांधी नेहरू और पटेल के पश्चात यदि किसी का नाम आता है तो वह दीनदयाल उपाध्याय जी का ही आता है (अनिल दत्त मिश्र, 2019)

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले के नगला चंद्रभान नामक स्थान पर 25 सितंबर 1916 को हुआ था 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' की तर्ज पर इनकी बुद्धि की कुशाग्रता बचपन से ही प्रदर्शित होने लगी थी। परंतु विधाता द्वारा समय - समय पर इनकी परीक्षा ली जाती रही और एक-एक कर उनके सभी अपने उनका साथ छोड़कर जाने लगे। पहले पिता, फिर माता, नाना ,वात्सल्य से परिपूर्ण नानी और यहां तक की भाई भी कम उम्र में ही साथ छोड़कर गोलोकवासी हो गए। साधारण मनुष्य इस परिस्थिति में बिखर जाता, परंतु दीनदयाल जी को शायद परमात्मा ने

ISSN 2455-2739
RNI No. : MPHIN/2000/03061

साहित्य परिक्रमा

अखिल भारतीय साहित्य परिषद् न्यास का साहित्यिक उपक्रम

फाल्गुन : युगाब्द ५१२५ | मार्च - २०२४ | वर्ष : २४ अंक : ४

राम मंदिर से राष्ट्र मंदिर

विशेषांक

राम मंदिर से राष्ट्र मंदिर विशेषांक

रचना	रचनाकार	पृ. क्र.
■ संपादकीय		04
■ प्रथमार्ध - साधना पर्व		
❖ सामाजिक समरसता का साक्षी : राम मंदिर आंदोलन	स्वांतरंजन	08
❖ नए युग का ऐतिहासिक शुभारंभ	रामलाल	10
❖ 'हमारी राष्ट्रीय पहचान'	रमेश पतंगे	13
❖ श्रीराम मन्दिर के सांस्कृतिक निहितार्थ	प्रो. रामेश्वर मिश्र 'पंकज'	16
❖ करहुं प्रणाम जोरि जुगपानी	आचार्य मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी	18
❖ राम की व्याप्ति	प्रो. उमेश कुमार सिंह	20
❖ राष्ट्र के पुनर्निर्माण का आधार बनेगा राम मंदिर	प्रो. (डॉ.) संजय द्विवेदी	24
❖ मंदिर अर्थात् संसार का शुभ और लाभ	विजय मनोहर तिवारी	27
❖ भारतीय भाषाओं में श्रीराम कथापरक साहित्य	डॉ. पवनपुत्र बादल	30
❖ देवायतन की परम्परा और श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर	डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'	32
❖ जन्मभूमि पर रामलला की प्राण-प्रतिष्ठा	प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय	40
❖ सांस्कृतिक पुनर्जागरण का शंखनाद है राम मंदिर	अखिलेश वाजपेई	42
❖ राम मंदिर के आर्थिक निहितार्थ	प्रो. ए.पी. तिवारी	48
❖ श्रीराम मंदिर के राजनीतिक निहितार्थ	ओम प्रकाश तिवारी	50
❖ आमजन के प्रिय हैं राम	के. विक्रम राव	54
❖ आत्म-विस्मृति से उबरने का प्रस्थान बिंदु	डॉ. अरुण प्रकाश	56
❖ राम मंदिर के धार्मिक निहितार्थ	देवांशु झा	58
❖ श्रीराम मंदिर : लोक हितार्थ	नित्यानन्द श्रीवास्तव	61
❖ जन-मन में बसे राम और उनकी मनोहारी छवि	डॉ. राजेश कुमार व्यास	64
❖ लोकमंगलकारी लोकरक्षक प्रभु श्रीराम	मुक्तिनाथ झा	68
❖ आस्था का अर्थशास्त्र और सांस्कृतिक निहितार्थ	कृष्ण बिहारी पाठक	73
❖ देश की आर्थिक व संस्कृतिक गतिविधि का केंद्र बनी अयोध्या	शिवेश प्रताप	76
❖ विदेशी आक्रांताओं द्वारा कश्मीर में मंदिर विध्वंस का इतिहास	डॉ. महाराजकृष्ण भरत	79
❖ आत्मसामर्थ्य जगाने वाले श्रीराम	डॉ. श्यामा घोणसे	83
❖ मराठी लोकजीवन में राम	प्रो.डॉ.रवींद्र बेम्बरे	85
❖ राम राम जपेंदेयां होवा मुख पवित्तर	प्रवीण गुगनानी	88
❖ अखिल विश्व के प्रेरणास्रोत श्रीराम	लोकेन्द्र सिंह	91
❖ वैश्विक परिदृश्य में रामकथा : विविध रंग	सुनील पाठक	95
❖ श्रीराम भारत की आत्मा है	प्रणय कुमार	97
❖ श्रीराम मंदिर निर्माण के निहितार्थ	सुरेश बाबू मिश्रा	100

श्रीराम मंदिर : लोक हितार्थ

नित्यानन्द श्रीवास्तव

वैदिक छन्दों की लोकोत्तरता से भिन्न लोक व्यापी करुणा से निष्पन्न सृष्टि का प्रथम लौकिक छन्द जब महर्षि वाल्मीकि के कण्ठ से ध्वनित हुआ तब उसी क्षण से छन्द-विधान का अथवा साहित्य का समकालीन जीवन सन्दर्भों में 'अवतार' भी हुआ। छन्द में कथ्य के विस्तार लिये तथा 'कथ्य' की तलाश के लिए महर्षि की व्याकुलता उसी छन्द में फिर-फिर अभिव्यक्ति हुई-

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत:।

1.1.2 वाल्मीकि रामायण

चारित्रेण च को युक्त: सर्वभूतेषु को हित:
विद्वान् क: क: समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शन:।

1.1.3 वाल्मीकि रामायण

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान कोऽनसूयक:
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।

1.1.4 वाल्मीकि रामायण

महर्षि किसकी खोज कर रहे है? इस समय संसार में गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़व्रती, सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितसाधक, विद्वान, सामर्थ्यशाली, प्रियदर्शन, आत्मवान, जितक्रोधी, कान्तिमान और किसी की भी निंदा न करने वाला तथा उसके रोष पर देवता भी उससे डरते हों ऐसा पुरुष कौन है?

महर्षि की जिज्ञासा असाधारण है। एक ही पुरुष में इतने गुण हों, यह तो प्राय: असम्भव सा है। नारदजी समाधान की दिशा में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राम के लोक प्रचलित यश तक पहुँचते है- इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनै: श्रुत:। (1.8) राम जन जन के मन में स्थित है- राम का कर्तृत्व उनके यश का कारण है। विचार करें, उनका यश महर्षि वाल्मीकि के 'साम्प्रत' से लेकर आज हमारे अपने समकाल तक हमारी अपनी 'सम्प्रति' तक महोदधि की तरंगों की तरह शाश्वत सनातन है। राम ने अपनी लोक-यात्रा में आम जन के मन में रावण की औपनिवेशिक क्रूरता से उत्पन्न भय का उन्मूलन कर उसे भयमुक्त किया है और आज उनका नाम विगत एक सहस्राब्दी से भारत भू पर छाए संकटों का उच्छेद कर रहा है।

लोक मन में राम जिस रूप में है उसे व्याख्यायित करते हुए जानकीनाथ शर्मा लिखते है, 'वेद जिस परमतत्व का वर्णन करते है, वही श्रीमन्नारायण तत्व श्रीमद्रामायण में श्रीराम रूप से निरूपित है। वेदवेद्य परमपुरुषोत्तम के दशरथनन्दन श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात वेद ही श्रीवाल्मीकि के मुख से श्रीरामायण रूप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है।' लोक को अभय देने वाले और उसे सम्प्रहर्षित करने वाले श्रीराम की कथा निरूपण कवियों, कलाविदों-शिल्पकारों, संगीतकारों, चित्रकारों आदि-आदि ने हर युग में किया है। विश्व के प्राय: हर देश के लोक कथानकों में कहीं न कहीं श्रीराम उपस्थित है।

श्रीराम तत्व की प्रतिष्ठा कालान्तर में मन्दिरों में हुई अयोध्या में तो होनी ही थी। अयोध्या वैदिक कालीन नगरी है- स्वयं मनु द्वारा स्थापित कोशल जनपद में स्थित इस अयोध्या के बारे में महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-

अयोध्या नाम नगरी तत्रसील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम्।

बालकांड 5.6

मन्दिरों के वास्तु-विन्यासों के विविध आयामों पर एक ओर जहाँ कवियों और कलाकारों ने अपने रचनाकर्म सम्पादित किये हैं, वहीं विश्व की कतिपय आसुरी शक्तियों ने अपने तंत्रवादी अभियानों में इनकी निन्दा तथा विध्वंस के कार्य भी किये हैं। एक पाश्चात्य विद्वान की आलोचना करते हुए महर्षि अरविन्द लिखते है-

A Good deal of hostile or unsympathetic western criticism of Indian civilisation has been directed in the past against its aesthetic side and taken the form of a disdainful or violent depreciation of its fine arts, architecture, sculpture and painting.[2]

वास्तव में, परम-तत्व क्रिया साध्य है। इसलिये भारत में कोई भी उपासना गृह मौलिक रूप से इसी विचार में संस्थित होता है। जीवन की अन्य क्रियाएँ जैसे आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि अपने प्रस्थान बिन्दु यहीं से तय करती हैं। इसलिए विगत शताब्दियों में हुए भारत पर आक्रमण और उन आक्रमणों के केन्द्र में रहे मठ-मन्दिर और विहारों की स्थिति को यहाँ समझा जा सकता है।

श्रीराम तो लोक-जीवन के सारे कर्म-विधानों की केन्द्रवर्ती भूमिका में हैं-यही स्थिति शिव और श्रीकृष्ण की है। इसलिए आक्रान्ताओं ने अपने विध्वंस के केन्द्र में इन्हीं से सम्बन्धित मन्दिरों और साहित्य को रखा है। यहाँ हम यदि महाप्रभु वल्लभाचार्य की लघुकाय कृति कृष्णाश्रय स्तोत्र पर विमर्श करें तो भारत के आहत मन को समझा जा सकता है। वल्लभाचार्य की पीड़ा क्या है? देश म्लेच्छों से आक्रांत हो गया है, गंगादि तीर्थों को दुष्टों ने अपवित्र कर दिय है- 'भारत का चतुर्वर्ण में निबद्ध समाज अपने गुणों को खो चुका है।'

इस पीड़ा की पृष्ठभूमि में श्रीरामजन्म स्थान पर नवनिर्मित मन्दिर के इतिहास और उसके निहितार्थ को समझा जा सकता है। हमारी पीढ़ी तो इस अर्थ में बड़भागी है कि हम सब इस उपलब्धि के साक्षी और सहभागी हैं। हम बड़भागी इस अर्थ में भी हैं कि श्रीरामजन्म भूमि पर निर्मित मन्दिर को हम कालचक्र और धर्मचक्र प्रवर्तन की भूमिका में देखा पा रहे हैं।

यहां अनायास चित्रकूट सभा में श्रीराम के एक प्रस्ताव का स्मरण मन को विह्वल करता है। भरत चित्रकूट की इस सभा में वनवास के प्रसंग में जो मर्मस्पर्शी बात कहते हैं-महर्षि वशिष्ठ के प्रस्ताव के समर्थन में-तब भरत के स्नेह में सने वाक्यों के कारण महर्षि की मति भी स्तब्ध रह गयी।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू ।।
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ।।

(258/अयोध्या कांड)

मुनि का प्रस्ताव था कि भरत और शत्रुघ्न वन में रहें और अयोध्या के सिंहासन में श्रीराम विराजे-लक्ष्मण और जानकी सहित अयोध्या पधारें। इस प्रस्ताव के आने पर श्रीराम ने सभा के विचारार्थ जो मत दिया, वह मत प्रवर्तन कारी है वे कहते है-

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत, लोकमत, नृपनय निगम निचोरि।।

(258/अयोध्या कांड)

भगवान का आग्रह है कि विचार की प्रक्रिया में साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ निकालकर निष्कर्ष पर पहुँचें।

इस अर्थ में विचार करें तो यह अनुभव में आएगा कि लोक और राज्य तथा लोक और राष्ट्र दोनों को किसी भी वाणिज्यिक, सामाजिक, पारिवारिक तथा वैश्विक सम्बन्धों के क्रियान्यवन की प्रक्रिया में इन चार चिन्तन स्तम्भों यानी, साधुमत, लोकमत, राजनीति और शास्त्रों का सम्यक मंथन करना बहुत आवश्यक है। इनके अभाव में तंत्र उच्छृंखल हो जाता है, अंततः संकट सम्पूर्ण वसुधा पर आता है। श्रीराम का लोकनायकत्व इसी समन्वय के कारण सिद्ध होता है। गोस्वामी जी ने राज्यादर्श की एक सूक्तिपरक चौपाई में भगवान के इस वक्तव्य को इस सन्दर्भ में उद्धृत किया है। श्रीराम अपने राज्य के नागरिकों को अनुशासन का संदेश स्वयं के व्यवहार से देते है।

जो अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।

(उत्तरकाण्ड 7-43)

श्रीराम जन्मभूमि के लिए जनान्दोलनों और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की घड़ी तक जिन व्यक्तियों, विचार-समूहों तथा राजनैतिक सम्प्रदायों ने बड़े-बड़े अवरोध उत्पन्न किए उन्हें अब यह सोचना चाहिए कि ये संघर्ष बलिदान, लोकजागरण के अभियान तथा विकट कानूनी लड़ाई सिर्फ एक मन्दिर मात्र के निर्माण के लिए नहीं बल्कि उस मूल्य की संस्थापना के लिए हो रहे थे, जिन मूल्यों का प्रवर्तन श्रीराम ने अपने लोकहितार्थ अभियानों में किया है। यह मन्दिर तो प्रभु के राज्यादर्श प्रतीक चिह्न है।

स्वाधीनता-बोध और स्वतंत्रता का बोध ये दोनों प्रत्यय किसी भी देश की लोक हितकारी व्यवस्था के मूल में होते है। पिछले कुछ वर्षों से भारतीय गणतंत्रात्मक राजनीति में जो मूल्यपरक परिवर्तन हुए हैं वे श्रीराम के लोकनायकत्व तथा राजत्व की दिशा में प्रतीत होते है। वैश्विक स्तर पर कोरोना महामारी के प्रसंग से ही देखें तो इस महामारी का टीका निर्मित कर विदेशी आर्थिक साम्राज्यवाद के कुचक्र का भेदन अत्यन्त दृढ़ता से भारतवर्ष ने किया है। इस तरह के असंख्य उदाहरण

हैं। स्वाधीनता के मूल में निर्भयता है और निर्भयता सज्जनता पहचान निर्मित करती है। श्रीरामजन्म भूमि पर निर्मित मन्दिर का एक प्रसंग इस प्रकरण में साहित्यिक और कलात्मक प्रविधियों से भी जुड़ता है। इन प्रविधियों में विगत कुछ दशकों से सेमेटिक चिन्तन प्रणालियों की जड़ और कालबाह्य स्थापनाएँ हावी होती रही है। इनमें एक नवसामी मत मार्क्सवादियों का है जिन्होंने अपने रचनात्मक और आलोचनात्मक कृति संदर्भों में भारतीय जीवन के सूत्रों का निरन्तर विरोध किया है। इस प्रक्रिया में वे श्रीरामजन्मभूमि आन्दोलन और अब जन्मभूमि पर निर्मित मन्दिर के निहितार्थों को अपनी प्रतिगामी मानसिकता के कारण समझ ही नही सके हैं। ऐसे चिन्तकों की विचार दृष्टि इस संदर्भ में जिज्ञासु भी होती तो वे देख पाते की उनकी मंडली किस प्रकार पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के प्रत्ययों में आबद्ध होकर आत्म-उन्मूलन कर रही है। आत्म-उन्मूलन प्रक्रिया में रचे गये साहित्य तथा कला कर्म किसी भी प्रकार से लोक हिताय तो नहीं हो सकते।

यह मन्दिर सिर्फ अपनी भौतिक प्रतीति में मन्दिर नहीं है। इसका दर्शन उस विचार-प्रक्रिया का प्रवर्तन करता है जहाँ मनुष्य आत्म-उन्मूलित नहीं होता बल्कि आत्म-संवादी बनता है। गोस्वामी जी ने श्रीराम को 'उथपे थपन उजारि बसावन' कहा है। इनकी अभय प्रदायिनी मुद्रा विस्थापितों को स्थापित करती है, उजड़े हुओं को स्थान देती है। यही तो साहित्य रचना का मूल्य है कि कृति अपने पाठ के माध्यम से दुखी और आर्तत चित्त में सद्भावों की उम्मीदों की, तथा विजिगीषु वृत्ति की स्थापना करे।

श्रीरामजन्मभूमि पर सद्यः निर्मित मन्दिर और उसके द्वारा सम्प्रेरित 'लोक हित' में लोक की सत्ता को समझना जरूरी है। यह लोक सिर्फ मानव केन्द्रित नहीं है बल्कि आँख और मन के माध्यम से जो कुछ देखा, सुना तथा समझा जाता है, वह सब 'लोक' ही है। यह 'लोक' अपनी व्यवस्था में रहे, यही तो श्रेयस्कर है। हमारे मन में राम का चिन्तन यदि क्रिया-साध्य बन सके तो लोक का प्रत्यय घटक अपनी व्यवस्था में रत रह सकेगा। तात्पर्य यह है कि यह मन्दिर लोक हिताय सत्य, ऋत (औचित्य), शौर्य, संस्कार, अध्यात्म और इन सबके लिए समर्पण का प्रेरक बनकर 'राष्ट्र मन्दिर' के रूप में स्थापित होगा।

सन्दर्भ-

1. जानकीनाथ शर्मा नम्र निवेदन से बाल्मीकि रामायण प्रथम खंड गीता प्रेस संवत 2045, पृष्ठ संख्या 01
2. श्री अरविन्द, The foundation of Indian culture: Sri Aurodindo Ashram, pondichery: 1998 page no.203

म. सं. 785 ए पाम ग्रुव कॉलोनी, अल्युमिनियम फैक्ट्री कैंपस, पोस्ट-बशारतपुर,
जिला- गोरखपुर, - 273 004
दूरभाष 7800989398

❖❖❖

आई.एस.एस.एन. क्रमांक-२५८१-६७५९

₹४०

ज्येष्ठ - आषाढ़ - २०८१ जून - २०२४

राष्ट्रधर्म

संस्थापक: पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

आई.एस.एस.एन. क्रमांक २५८१-६१७६

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ-शक्ति ध्रुवतारा है।
बनें जगद्गुरु भारत फिर से, यह संकल्प हमारा है।

अनुक्रम

४. सम्पादकीय

७. अब राजग सरकार — डॉ. जितेन्द्र कुमार

१०. २०२४ : राजनीति के कैलेंडर... — विजय मनोहर तिवारी

१२. 'हमारे लिए गर्व का विषय...' — मान. सरकार्यवाह दत्तात्रेय होसबाले

१७. भारत में कश्मीर-विलय के शिल्पी श्री गुरुजी

२०. सामाजिक परिवर्तन से ही...

२२. विद्वता, निष्ठा और समर्पण... — सदानन्द प्रसाद गुप्त

२८. दीनी तालीम में सिसकता बचपन — प्रसून 'प्रयाग'

३२. सेवा के धाम : विष्णु कुमार जी

३३. प्यास की गूँज : साहित्यिक यात्रा — प्रो. शेख अकील अहमद

३८. सत्रीय संस्कृति संगम... — आचार्य चन्दन कुमार

४०. सोहति सीय राम कै जोरी — आचार्य मिथिलेशनन्दिनीशरण

४४. ज्येष्ठे सर्वे ज्येष्ठा : अकिंचना... — डॉ. राम रघुवंश मणि शुक्ल

४७. भारतीय ज्ञान-परम्परा की... — प्रो. करुणा गुप्ता

५०. प्राकृतिक सौन्दर्य से... — डॉ. जनमेजय तिवारी

५६. भारतीय परम्परा में नारी... — डॉ. प्रेमलता देवी

पुस्तक-समीक्षा

५८. भाषायी स्वत्वबोध... — नित्यानन्द श्रीवास्तव

६१. लक्ष्मीनारायण लाल... — डॉ. वेद मित्र शुक्ल

कविताएँ

१६. करें योग रहें निरोग — निधि द्विवेदी

२७. मनोचिंतन — शुभम तिवारी

५७. प्रदूषण — ओम उपाध्याय

विशेष

'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित सामग्री का उपयोग 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि०' किसी भी रूप में कर सकता है।

परामर्शदाता
डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त

सम्पादक मण्डल
डॉ. अमित कुशवाहा
डॉ. अमित उपाध्याय
डॉ. राजशरण शाही
डॉ. अनुज कुमार मिश्र
मानवेन्द्र नाथ पंकज

प्रभारी निदेशक
सर्वेश चंद्र द्विवेदी
मो: ९४१५१०७०५६

प्रबंधक
डॉ. पवनपुत्र बादल
मो: ९४५०९३२११७

सम्पादक
प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय
मो: ९४५०९३२२६५

निदेशक
मनोजकांत
मो: ९४१५८५०४७८

- लेखक के विचारों से सम्पादक एवं प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- किसी भी विवाद में न्यायक्षेत्र लखनऊ होगा।

आवरण सज्जा
SASONE
लव कालरा
+91 9565155000

राष्ट्रधर्म मासिक पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करने के लिए स्कैन करें

दूरभाष: (०५२२)- ४०४१४१४ (सम्पादकीय)
दूरभाष: (०५२२)- २६९१३८४ (व्यवस्था)
editor_rdm_1947@rediffmail.com,
mgr.rdm.1947@gmail.com,
nideshakrdm@gmail.com
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ - २२६००४

वर्ष - ७७, अंक - ११
ज्येष्ठ-आषाढ़-२०८१
(युगाब्द - ५१२५-५१२६)
जून - २०२४
अंक मूल्य: रु ४०, वार्षिक : ₹ ४००
आजीवन (२० वर्ष) : ₹ ७०००
विदेश के लिए वार्षिक : ८० डॉलर

भाषायी स्वत्वबोध और हिन्दी

नित्यानन्द श्रीवास्तव

'भाषायी स्वत्वबोध और हिन्दी' आचार्य सदानन्द प्रसाद गुप्त की भारतीय चिति के आधार पर 'भाषा' के तात्विक चिंतन को उद्घटित करने वाली बहुत महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। 'हिन्दी' की चिन्ता इसलिए केन्द्राभिमुख है कि पाश्चात्य और कतिपय भारतीय भाषा–पण्डितों की चिन्तन प्रणालियाँ हिन्दी के प्रश्न पर बहुत नकारात्मक तथा किंचित बुद्धि भ्रंशात्मक भी रही हैं। इस पुस्तक में कुल ग्यारह चिंतनपरक तथा शोधपरक निबन्ध सम्मिलित हैं। ग्यारह निबन्धों के केन्द्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर निर्मल वर्मा जैसे आधुनिक भारतीय साहित्यकारों तक की भाषायी संवदेना को समेटने का श्रम साध्य कार्य आचार्य गुप्त ने किया है।

पुस्तक : भाषायी स्वत्वबोध और हिन्दी
लेखक : प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त
प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज
मूल्य : रु. ६००/–

पुस्तक की भूमिका में ही प्रसिद्ध दर्शन तत्त्ववेत्ता डॉ. कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य को उद्धृत करते हुए आचार्य गुप्त रेखांकित करते हैं कि 'वास्तविक पराधीनता सांस्कृतिक पराधीनता से आती है और सांस्कृतिक पराधीनता का आरंभ भाषायी पराधीनता से होता है।' भाषायी अस्मिता और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र शीर्षक निबन्ध में आचार्य गुप्त कहते हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में किया गया कार्य भारत के स्वाभिमान और स्वत्व के जागरण का कार्य है। भारतेन्दु के स्वभाषा अभिमान का एक बड़ा उदाहरण यह है कि उन्होंने हिन्दी को लेकर घर कर गयी हीनता की ग्रन्थि को निकाल फेंका। भारतेन्दु के जन्म के पूर्व से ही हिन्दी–उर्दू का द्वन्द्व चल रहा था। जॉन गिल क्राइस्ट जैसे कुछ पाश्चात्य पंडित इस विवाद को न केवल बढ़ा रहे थे बल्कि वे हिन्दी के फारसीकरण पर भी जोर दे रहे थे। भारतेन्दु के आगमन के बाद इसमें परिवर्तन आया। इस महत्त्वपूर्ण अध्याय में आचार्य गुप्त बड़ी स्पष्टता से यह तथ्य प्रवर्तित करते हैं कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्वभाषा प्रेम उनके राष्ट्र प्रेम से जुड़ा है और उनका आधार स्वत्वबोध और स्वाभिमान है।

प्रेमचन्द के समय तक स्वभाषा और स्वराष्ट्र प्रेम का संयोग राष्ट्रभाषा के विमर्श तक पहुँच गया था। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द को उद्धृत करते हुए आचार्य गुप्त लिखते हैं, 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध नहीं हो सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजिमी है। अगर सम्पूर्ण भारत को एक बनाना है तो उसे एक भाषा का आधार लेना ही होगा।

प्रेमचन्द स्पष्टतया कहते हैं कि मुझे याद नहीं आता है कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त कर सका हो। प्रेमचन्द राष्ट्रभाषा और राष्ट्र में कार्य–कारण सम्बन्ध मानते थे। प्रेमचन्द की इस भाषायी राष्ट्रोन्मुखता को लक्ष्य कर आचार्य गुप्त ने भारत के कुछ अन्तरराष्ट्रीयतावादियों यानी अबके वामपन्थियों पर एक सधा हुआ व्यंग्य भी किया है। प्रेमचन्द के समय हिन्दी–उर्दू द्वन्द्व के साथ ही 'हिन्दुस्तानी' नाम की एक कल्पित भाषा का विवाद भी सामने आ रहा था। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की आलोचना करते हुए आचार्य गुप्त कहते है कि प्रेमचन्द स्पष्ट रूप से पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने की बात कह रहे थे, एकाएक 'हिन्दुस्तानी' पद का प्रयोग करने लगते है। यह वस्तुतः भाषा के विषय में समाज में व्याप्त दोचितापन का ही प्रतिबिम्ब था जो प्रेमचन्द में स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

उस कालखण्ड में हिन्दी–उर्दू– हिन्दुस्तानी के भाषायी द्वन्द्व में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथ्यपरक और तर्क संगत बात कहते है। इस प्रसंग पर विस्तार से चर्चा करते हुए आचार्य गुप्त ने शुक्लजी के ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान सम्बन्धी तथ्य को रेखांकित करते हुए लिखा है कि 'उर्दू को रूप प्राप्त होने के पहले भी खड़ी बोली अपने

देशी रूप' में वर्तमान थी और अब भी बनी हुई है।' वास्तव में शुक्ल जी राजनीतिक कारणों से उर्दू को अधिक महत्त्व दिये जाने से अत्यन्त क्षुब्ध थे। आचार्य गुप्त कहते है, "वे (शुक्ल जी) देख रहे थे कि सभी प्रादेशिक भाषाओं का आधार संस्कृत है। इसलिए यदि हिन्दी संस्कृत का आधार लेकर खड़ी हो तो अन्य प्रदेशों में सहजता से ग्राह्य हो सकती है।" इस निबन्ध में आचार्य गुप्त ने फ्रेडरिक पिन्काट के हिन्दी प्रेम को उद्घाटित करते हुए शुक्ल जी के उक्त विषयक उस लेख की चर्चा की है जिसका प्रकाशन जनवरी १९०८ के 'सरस्वती' पत्रिका के अंक में हुआ था। आचार्य शुक्ल के भाषा–चिन्तक व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हुए गुप्त जी लिखते हैं, "वे भारत की समृधी अर्थ परम्परा एवं शब्द परम्परा के सामंजस्य की बात करते हैं, हिन्दी–उर्दू सम्बन्धों पर वैज्ञानिक ढंग से तर्क करते हैं, समस्त भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी के विकास की कामना करते हैं तथा संस्कृति की लम्बी परम्परा से सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे सभी राजनीतिक दबावों की अनदेखी करते हुए भाषायी अस्मिता की पहचान करते हैं, उसे स्वर देते हैं।"

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के साहित्यिक और भाषा–चिन्तक व्यक्तित्व पर सामान्यतः बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। आचार्य गुप्त ने इस पुस्तक में राजेन्द्र बाबू के संवदेनशील भाषा–चिन्तक व्यक्तित्व पर महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध करायी है। उनके हिन्दी–प्रेम का दृष्टान्त यह है कि 'उन्होंने कलकत्ता में अध्ययन करते समय ही अन्य लोगों की सहायता से 'हिन्दी साहित्य परिषद' की स्थापना की। प्रसिद्ध पत्रकार जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी को उद्धृत करते हुए गुप्त जी लिखते हैं, 'राजेन्द्र बाबू उन लोगों में से थे जिनके कारण संविधान सभा ने हिन्दी को मान्यता दी और जब तक वे राष्ट्रपति रहे, उन्होंने अपने भाषणों में चाहे संसद के समक्ष हों, चाहे विदेश में हों, हिन्दी को प्राथमिकता दी थी। वे चाहते थे कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बने। राजेन्द्र बाबू की भाषा–दृष्टि की विशेषता को रेखांकित करते हुए गुप्त जी लिखते हैं कि "उन्होंने जनजातियों बोलियों–सन्थाली, मुंडाली, पहाड़ी, खड़िया आदि बोलियों के साथ सम्पर्क बनाने की भाषा के विकास की भी बात की और जनजातीय पर जोर दिया।" राजेन्द्र बाबू के सहज एवं सरल व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हुए आचार्य गुप्त ठीक ही लिखते हैं– राजेन्द्र बाबू ने न तो अपने को भाषा–वैज्ञानिक माना, न ही बड़ा साहित्यकार पर जब हम उनके व्याख्यानों से गुजरते हैं तो हमारे समक्ष वे भाषा–विज्ञानी, भाषा–साहित्य मर्मज्ञ तथा इतिहास–बोध सम्पन्न विद्वान के रूप में आते हैं। यह भारतवासियों का सौभाग्य है कि ऐसा सर्वविध सम्पन्न व्यक्ति हमें प्रथम राष्ट्रपति के रूप में मिला।"

हिन्दी भाषा और साहित्य के एक अद्भुत प्रेरक प्रकाशपुंज के रूप में उन दिनों आचार्य शिवपूजन सहाय का रचनात्मक व्यक्तित्व हमारे समक्ष आता है। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए आचार्य गुप्त लिखते हैं, "वे कथाकार, पत्रकार, सम्पादक, आलोचक तथा संस्मरणकार थे।" यह भी कि आचार्य जी के मन में हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप को लेकर कोई शंका नहीं है, वे गहरे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं, 'हम डंके की चोट पर कह सकते हैं कि भारतवर्ष में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसकी आवाज हिमालय के गौरीशंकर शिखर से कन्याकुमारी तक काफी प्रभाव के साथ गूँज सकती है, अटक से कटक तक छाई रह सकती है। वास्तव में उस दौर के सभी प्रबुद्ध भाषा–चिंतक यह अंकुठ भाव से स्वीकार करते थे कि हिन्दी संस्कृत की स्वाभाविक उत्तराधिकारिणी है। आचार्य शिवपूजन सहाय भी इस तथ्य से सहमत हैं कि हिन्दी का रूप–संघटन संस्कृत के शब्दानुशासन के अनुसार है। इसी दौर में गाँधी जी ने भाषाई समन्वय के नाम पर एक बड़ा संकट खड़ा कर दिया था।

आचार्य गुप्त लिखते हैं, "उन्होंने हिन्दी को देवनागरी और फारसी लिपि में लिखे जाने का आह्वान किया। आगे चलकर गाँधी जी हिन्दुस्तानी के पक्ष में हो गये।" गाँधी जी के अनुकर्ता यह प्रचारित भी कर रहे थे कि यह हिन्दुस्तानी हिन्दू–मुस्लिम एकता का सेतु सिद्ध होगी। अन्य प्रबुद्ध भाषा–चिन्तकों की तरह आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस कृत्रिम भाषा का प्रबल विरोध किया। आचार्य जी की व्यंग्यात्मक भंगिमा को उद्धृत करते हुए गुप्त जी लिखते हैं, "भाषा की नई टकसाल खोलकर उसमें हिन्दुस्तानी के नाम पर जो खोटे और नकली सिक्के ढाले जा रहे हैं, उनका जबर्दस्त बहिष्कार होना आवश्यक है।" स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी के विरोध के स्वरों पर भी आचार्य जी ने सचेत दृष्टि रखी है। उनकी इस सर्वसमावेशी दृष्टि का उल्लेख करते हुए गुप्त जी लिखते है, हिन्दी आतंक के बल पर अपनी सत्ता स्थापित करना नहीं चाहती। किसी के प्रति इसका दुर्भाव नही है। सबके साथ सदभाव और सहयोग ही इसका सिद्धांत है।"

राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए हुए वैचारिक संघर्ष में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के योग को रेखांकित करते हुए आचार्य गुप्त कहते हैं कि राहुल जी की राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक प्रखर रूप भाषा के क्षेत्र में दिखाई देता है। उन्होंने हिन्दी भाषा और भारतीय भाषाओं के साहित्य का उनकी महान परम्परा से जोड़कर अध्ययन और विश्लेषण किया। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर राहुल जी ने अपना मत दृढ़ता से हिन्दी के पक्ष में रखा। गुप्त जी ने उद्धृत किया है, "लोग राजनीतिक कारणों से हिन्दुस्तानी का समर्थन करते है जबकि मैं हिन्दी का इस कारण समर्थक हूँ कि हिन्दी सबसे पुरानी भाषा है।

सुमित्रानंदन पंत ने दृढ़ता से रेखांकित किया कि अजेय राष्ट्रीय मानस के निर्माण के लिए राष्ट्रभाषा आवश्यक है। विदेशी भाषा राष्ट्रीय निष्ठा समाप्त कर देती है।

हिन्दू–मुस्लिम के प्रश्न पर भी राहुल जी सतर्क टिप्पणी करते हैं. "ईसाइयों, पारसियों और बौद्धों के भारतीयता से एतराज नहीं फिर इस्लाम ही को क्यों ? अभी हमारे 'राष्ट्रीय' मुसलमान भाई भी नहीं समझ पाये हैं कि उनकी संतानों को नवभारत में कहाँ तक जाना है? भारत ऐसे मुसलमानों को चाहेगा, जो अपने धर्म के पक्के हों किन्तु साथ ही उनकी भाषा, देशभूषा और खान–पान में भारतीयों से कोई अन्तर न हो, भारत के गौरवपूर्ण इतिहास के प्रति आदर रखने में वे दूसरों से पीछे न हों।" राहुल जी ने राष्ट्रभाषा के बारे में दो बड़े नेताओं के ढुलमुल रवैये की कड़ी आलोचना की है। उनमें से एक नेहरू जी और दूसरे मौलाना अबुल कलाम आजाद। मौलाना आजाद के प्रति राहुल जी की यह टिप्पणी ध्यातव्य है–"मौलाना आजाद हिन्दी के कितने हिमायती है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी के भानुमती के कुनबे में यह मौलाना देश के दुर्भाग्य से ढेरी के साँप बनकर बैठ गये।" नेहरू जी और मौलाना आजाद की भाषा सम्बन्धी नीति और समझ पर राहुल जी के वक्तव्य को रेखांकित करते हुए आचार्य गुप्त लिखते हैं कि मौलाना और नेहरू हिन्दी को १९६६ में तो क्या सन् २००० ई. में भी राष्ट्रभाषा नहीं बनने देना चाहते।"

भाषायी अस्मिता के स्वरूप पर निराला जी का चिंतन अन्यतम है। उन दिनों कुछ लोग खासकर 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक हिन्दी भाषा की क्लिष्टता पर प्रश्न खड़े कर रहे थे। निराला इन सभी पर एक सधा हुआ व्यंग्य करते है–भाषा की क्लिष्टता से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न हिन्दी की तरह अपर भाषाओं में नहीं उठते। "इस दृष्टि से निराला जी ने भाषा की दृष्टि से जनता के प्रशिक्षण की बात जोर देकर की है। निराला जी को उद्धृत करते हुए गुप्त जी टिप्पणी करते हैं– बँगला, असमिया, उड़िया, मराठी आदि भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुत अधिक मात्रा में है और रचे–बसे भी हैं, वे आम जनता की जिह्वा पर हैं तो यदि जनता का प्रशिक्षण हो तो हिन्दी में भी ऐसा संभव हो सकता है। नेहरू जी की भाषा–नीति की बड़ी निर्भीकता से आलोचना भी निराला जी ने की है।

वे सुधा के दिसम्बर १९३३ के अंक में लिखते हैं, 'जवाहर लाल नेहरू आधुनिक हिन्दी साहित्य से परिचित नहीं है और हिन्दी से उनका लगाव भी नही है। उनका दिमाग पश्चिमीकृत हैं। इसी तरह सुमित्रानंदन पंत ने दृढ़ता से रेखांकित किया कि अजेय राष्ट्रीय मानस के निर्माण के लिए राष्ट्रभाषा आवश्यक है। विदेशी भाषा राष्ट्रीय निष्ठा समाप्त कर देती है। गुप्त जी पंत जी के भाषा–चिंतक व्यक्तित्व को निरूपित करते हुए लिखते है, पंत जी देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परम्परा के अनुरूप राष्ट्रभाषा का स्वरूप खड़ा करना चाहते हैं।

राष्ट्रीय स्वाभिमान, स्वत्वबोध और स्वतंत्रता के बहुविध आयामों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य अप्रतिम है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक परमपूज्य माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर के विचार इस संदर्भ में युग प्रवर्तक हैं। इस ग्रंथ में आचार्य गुप्त जी ने कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य रखे हैं। गोलवलकर जी की इस संदर्भ में स्पष्ट वैचारिकी को उद्धृत करते हुए लिखते हैं, "जिसे अपने राष्ट्र का स्वाभिमान है, वह किसी भी स्थिति में पराई भाषा का अभिमान लेकर नहीं चल सकता।" उन्हें इस बात का गहरा दुःख है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अंग्रेजी यहाँ बनी रह गयी, "अंग्रेजों के साथ ही अंग्रेजी को चले जाना चाहिए था।" श्री गुरुजी के व्यक्तित्व तथा उनके भाषा–चिन्तन की वस्तुनिष्ठता को रेखांकित करते हुए गुप्त जी लिखते हैं "गोलवलकर जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के राष्ट्रीय प्रमुख होने के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण एकाधिक बार कर चुके थे। उन्होंने यह भली–भाँति परखा था कि संस्कृत प्रधान शब्दावली से सम्पन्न हिन्दी सभी को सहज और सरल होगी। वे स्पष्ट कहते हैं कि अरबी–फारसी मिश्रित भाषा विन्ध्याचल के नीचे कोई नहीं समझेगा।

इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में आचार्य सदानन्द प्रसाद गुप्त ने अज्ञेय और निर्मल वर्मा के हिन्दी भाषा के स्वत्वबोध के सम्बन्ध में भी उनकी विचार सरणियों को उद्घाटित किया है। उनके व्यक्तित्व का स्मरण करते हुए आचार्य गुप्त लिखते है, अज्ञेय और निर्मल वर्मा स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्य के ऐसे चिन्तक रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य को रचनात्मक और वैचारिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न किया है। सृजन और चिन्तन के पठारीपन के दौर में अज्ञेय और निर्मल वर्मा जैसे कृति व्यक्तित्व के होने का क्या अर्थ था, यह उनके जीते जी जितना स्पष्ट था, उससे अधिक उनके तिरोधान के बाद उजागर हो रहा है।"

स्वातंत्र्य पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर भारतवर्ष में भाषायी अस्मिता, स्वाभिमान और स्वत्वबोध के लिए हुए वैचारिक संघर्षों, अन्तर्द्वन्दों तथा वास्तविकताओं को समझने के लिए यह पुस्तक सभी प्रकार के पाठक वर्ग के लिए बहुत–उपयोगी है। विशेषकर युवा पीढ़ी को इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

दूरभाष : ९४५२८४७३२८, ८०८९२८५५७६

₹ 30/-

साहित्य अमृत

RNI No. 62112/95

साहित्य अमृत

मासिक

फाल्गुन-चैत्र, संवत्-२०८० • मार्च २०२४

वर्ष-२९ • अंक-८ • पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | RNI No. 62112/95 | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक
पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक
डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)
श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक
पीयूष कुमार

संपादक
लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक
डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक
उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२
फोन : ०११-२३२८९७७७
०८४४८६१२२६९
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क
एक अंक—₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण
बैंक ऑफ इंडिया
खाता सं. : 600120110001052
IFSC : BKID0006001

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं जे.के. प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

इस अंक में

✍ संपादकीय
साहित्य और सिनेमा की दूरी ४

✍ प्रतिस्मृति
हमके ओढ़ा द चदरिया हो, चलने की बेरिया/ उषाकिरण खान ६

✍ कहानी
प्यार और जिंदगी/ अमरनाथ अग्रवाल १०
काकी/ रचना मीना १६
कालचक्र/ एस.डी. मिश्रा 'आनंद' २२
किराएदार माँ-बाप/ प्रियंका पाठक ४०
गोपनीय मिशन/ सुरेश बाबू मिश्रा ५०
यमराज की व्यथा/ प्रदीप सिंह गुसाईं ७५

✍ लघुकथा
वक्त अपनों के लिए/ डोली शाह २६
पाँच लघुकथाएँ/ रामनिवास 'मानव' २८
क्या बुराई है/ डोली शाह ५४
कल्पनाओं की दुनिया/ डोली शाह ६९

✍ आलेख
दक्षिण अयोध्या में 'भद्रादि रामन्ना' के प्रभु राम/ पद्मावती १२
तब समझ पाता हूँ मेरी माँ के राम/ राजशेखर व्यास २०
तुलसी-पथ की प्रवर्तक : रत्नावली/ नित्यानंद श्रीवास्तव ३०
शिवानी : लोकप्रिय सर्जना का पुनर्पाठ/ वेदप्रकाश अमिताभ ४४
प्रकृति-संरक्षण में साहित्य की भूमिका/ भावना शेखर ५२
साझी संस्कृति की विरासत और जम्मू-कश्मीर का साहित्य/ बबिता सिंह ७०

✍ कविता
गीत-गजल/ बालस्वरूप राही ९
नारी विमर्श के दोहे/ सुबोध श्रीवास्तव ११
रंगों का त्योहार/ गोविंद भारद्वाज १९
प्राण-प्रतिष्ठा हर्ष / दिनेश भारद्वाज २१
देख लेते एक बार/ बी.एल. गौड़ २७
फागुन गीत/ सकुंतला अग्रवाल सकुन ३३
पिचकारी मन की भरो/ प्रीति चौधरी 'प्रीत' ३७
व्यथा बोझ से व्याकुल पतझर / विनय मिश्र ४३
भारतवासी/ शरद नारायण खरे ४६
नीति के दोहे/ हरदान हर्ष ६४
दोहे-नवगीत/ योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ६५
भाप बनता पसीना/ राजीव कुमार 'त्रिगर्ती' ७४

✍ राम झरोखे बैठ के
पेड़ की पीड़ा/ गोपाल चतुर्वेदी ३४

✍ लोक-साहित्य
गद्दी जनजाति के लोकनाट्य/ भरत सिंह ३८

✍ व्यंग्य
चंदू रंगलाल की होली, चिंतन के रंगीन रंगताल में/ आलोक सक्सेना ४८

✍ साहित्य का भारतीय परिपार्श्व
रीत/ मधुकर धर्मापुरीकर ५५

✍ यात्रा-वृत्तांत
इंडोनेशिया की यात्रा/ शेफालिका सिन्हा ५८

✍ ललित-निबंध
ठंडा तेल/ हरिशंकर राढ़ी ६२

✍ साहित्य का विश्व परिपार्श्व
आधी रात का स्वप्न/ विलियम शेक्सपियर ६६

✍ बाल-संसार
जंगल वाली लड़की/ बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' ७७
रंग-बिरंगी होली/ मंजरी शुक्ला ६०
नया सवेरा आएगा/ कमलेंद्र कुमार श्रीवास्तव ७८

✍ वर्ग-पहेली ७९
✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८०
✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८१

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

आलेख

तुलसी-पथ की प्रवर्तक : रत्नावली

• नित्यानंद श्रीवास्तव

सुपरिचित लेखक एवं शिक्षक। अब तक द पुस्तकें 'जातीयता की चेतना : साहित्य भाविर विमर्श', 'भक्ति : भय और भूख की अंतर्यात्रा' इसके अलावा लगभग पचास शोधपत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संप्रति गोरखपुर र दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज में हिंदी के प्राध्यापक

यह लोक में प्रचलित है कि रत्नावली ने अपने पति गोस्वामी तुलसीदास को किन्हीं भावाकुल क्षणों में कुछ ऐसा कह दिया कि वे गृहस्थ-जीवन छोड़ अपने आध्यात्मिक पथ की ओर गतिमान हुए। पति से विछोह का वह क्षण रत्नावली के लिए सहज नहीं था—संभवत: गोस्वामीजी के लिए भी न रहा हो। कहीं-कहीं इसकी अनुगूँज उनके साहित्य में भी प्रतीत होती है, जैसे—

लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुनी चाय।
जौवन जर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोष, भरि मदन बाय॥

यानी लड़कपन तो अज्ञान में ही चला गया, चित्त में तब अब से चौगुनी चंचलता और प्रसन्नता थी और यौवनरूपी ज्वर में स्त्री रूप कुपथ्य कर बैठा। एक तो वैसे ही ज्वर चढ़ रहा था, तिस पर कुपथ्य कर लिया। सन्निपात हो गया और सारे शरीर में कामरूप वायु भर गई, कामोन्माद हो गया। (विनय पत्रिका से)

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥
(रामचरितमानस, उत्तरकांड)

मोह और काम से रामपद की यात्रा गोस्वामीजी के सिर्फ व्यक्ति मन की यात्रा बनकर रह गई होती तो वे गुफा-गेह वासी सिद्ध ही रह गए होते। मन की व्यक्तिगत व्यथा का तंत्र लोक-मन से जुड़ा। क्रूर आततायी बादशाही शक्तियों के आतंक तथा भय, दीनता और मोह से निर्बल लोक मन की दुर्बल अवस्था का चित्र भारत के उत्तरापथ का सुलभ चित्र था। रामपद की व्यक्ति तुलसीदास की यात्रा 'लोक मंगल' की साधनावस्था के महाकाव्य में अवतरित हुई। घर-घर में हनुमान पताकाओं की स्थापना में, कीर्तन मंडलियों में, अखाड़ों में तथा रामकथा के जीवंत मंचन में सर्वसमाज की सहभागिता हुई—हतप्रभ कुंठित और भयभीत लोकमन के हनुमानजी और 'राजा रामचंद्र की जय' के दिग्-दिगंत व्यापी उद्घोष ने अंधकार से आवृत मन को संबल दिया, अँधकार से ढके आसमान में आशा, श्रद्धा और विश्वास की किरणें फूट पड़ीं। इतना सब रत्नावली के जिस प्रेरक वाक्य के कारण उद्घाटित हुआ, उसे आज लोकमन इन पंक्तियों में याद करता है—

अस्थि चर्ममय देह यह ता सों ऐसी प्रीति।
नेकु जो होती राम से तो काहे भव भीति॥

इसी एक दोहे में पूरा भारत-दर्शन है, पूरा भारत-बोध है।

नाभादास कृत 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास ने गोस्वामीजी के गृहत्याग की घटना का वर्णन किया है। भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १६६० है और प्रियादास ने इसकी टीका संवत् १७६८ में की। संवत् १८५५ में प्रकाशित अपने प्रबंध तुलसीदास में निरालाजी इस वृत्त को तथा रत्नावली के कथन को इस प्रकार उद्धृत करते हैं—

'धिक्! आए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।'

साधारण गृहस्थ नर-नारियों को ये कथन निश्चित रूप से मर्यादा विरुद्ध लगे होंगे। लेकिन निरालाजी के इस प्रबंध में गोस्वामीजी इन प्रवर्तक क्षणों को महसूस करते हैं। रत्नावली का यह रूप तो वाग्देवी का रूप है—

देखा शारदा नील वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रसना
जीवन-समीर-शुचि-नि:श्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर- निर्झर,
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री।

वाग्देवी रूपी रत्नावली के वाक्य फलीभूत हुए। भारत को 'भक्तमाल सुमेरु' के रूप में गोस्वामी तुलसीदास मिले, लेकिन रत्नावली के शेष जीवन के बारे में लोग अपरिचित रह गए। रत्नावली के ऐतिहासिक वृत्त को लिपिबद्ध करने की दिशा में मुरलीधर चतुर्वेदी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने ३३ छंदों में 'रत्नावली चरित' नामक प्रबंध की रचना श्रावण शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् १८२८ को की। वर्तमान में आंग्ल पंचांग के अनुसार यह तिथि १ जुलाई, १७७२ है। इस ग्रंथ के अलावा आचार्य वेदव्रत शास्त्री ने 'रत्नावली' शीर्षक से ग्रंथ १८८० ई. में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ से प्रकाशित कराया। इस ग्रंथ में रत्नावली की रचनाएँ और मुरलीधर चतुर्वेदी कृत 'रत्नावली चरित' दोनों संकलित हैं।

रत्नावली चरित के अनुसार शूकर क्षेत्र में स्थित बदरिका (बदरिया) ग्राम में दीनबंधु पाठक और दयावली की चौथी संतान के रूप में रत्नावली का जन्म हुआ। पिता ने तीनों पुत्रों और रत्नावली को समुचित शिक्षा दी। रत्नावली बचपन से ही प्रखर बुद्धि की थीं। मुरलीधर चतुर्वेदी लिखते हैं—

प्रखर बुद्धि तेहि जनक जानि। पाटी बुदिका दयो लानि॥
कहू दिनन महं भई जोग। कहहि सरसुती ताहि लोग॥
पुनि ब्याकरनहुँ पितु पढाइ। दीनो कोश हु तेहि घोंटाय॥
वालमीकि पुनि पढ़न लागि। गई भारती तासु जागि॥
पिंगल के कछु अंग जानि। काव्य करन की परी बानि॥

रत्नावली चरित एवं स्वयं रत्नावली के साहित्य के साक्ष्य से उनके जीवन के महत्त्वपूर्ण कालखंडों के बारे में पता चलता है। इन साक्ष्यों के अनुसार संवत् १५७७ में उनका जन्म हुआ, विवाह संवत् १५८८ में हुआ, गौना संवत् १५८३ में, पति का गृहत्याग संवत् १६०४ में हुआ तथा रत्नावली की मृत्यु संवत् १६५१ में ७८ वर्ष की अवस्था में हुई। संवत् १६०४ में सत्ताईस वर्ष की उम्र में पति का गृहत्याग हुआ तथा इसी वर्ष रत्नावली को माँ की मृत्यु की पीड़ा भी मिली। अपने एक दोहे में वे कहती हैं—

दैव बारही बार गयो सोरहि गौन कराय।
सत्ताइस लागत करी, नाथ रतन असहाय॥
सागर रव रस ससि रतन संवत मो दुःखदाय।
पिय वियोग जननी मरन, करन न भूल्यो जाय॥

रत्नावली चरित के अनुसार शूकर क्षेत्र में स्थित बदरिका (बदरिया) ग्राम में दीनबंधु पाठक और दयावली की चौथी संतान के रूप में रत्नावली का जन्म हुआ। पिता ने तीनों पुत्रों और रत्नावली को समुचित शिक्षा दी। रत्नावली बचपन से ही प्रखर बुद्धि की थीं। मुरलीधर चतुर्वेदी लिखते हैं—

प्रखर बुद्धि तेहि जनक जानि। पाटी बुदिका दयो लानि॥
कहू दिनन महं भई जोग। कहहि सरसुती ताहि लोग॥
पुनि ब्याकरनहुँ पितु पढाइ। दीनो कोश हु तेहि घोंटाय॥
बालमीकि पुनि पढ़न लागि। गई भारती तासु जागि॥
पिंगल के कछु अंग जानि। काव्य करन की परी बानि॥

स्त्री-शिक्षा और स्त्री-विमर्श पर पाश्चात्य आधारों पर चिंतन करने वाले आज के महानुभावों को यह उदाहरण ध्यान में रखना चाहिए।

ऐसी सुयोग्य कन्या के वरान्वेषण में पिता गुरु नृसिंह की पाठशाला के विद्यार्थी तुलसीदास के गुणों से प्रभावित हुए। विवाह हुआ। कुछ समय पश्चात् तारापति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ—

तारापति नामक सुपूत। भयो तासु कुपित अकूत।
गयौ दैव गति स्वर्गधाम। बिलपति रत्नावली बाम॥

इस दुर्घटना के कुछ समय बाद रत्नावली अपने भाई के साथ मातृगृह गईं। मुरलीधर चतुर्वेदी ने इस प्रसंग में प्रचलित कथा से थोड़ी भिन्न प्रस्तुति की है। उनके अनुसार रत्नावली का अपने मायके जाना अकस्मात् नहीं था, इसमें तुलसीदास की सहमति थी।

राखी बंधन एक बार। भ्राता संग हिय हरख धार॥
पति आयसु गहि सीस नाय। गई मायके सदन धाय॥
इत तुलसी करिबे नवाह। गए सुमिरि उर अवध नाह॥
तुलसी ग्यारह दिन बिताई। आये तिनहि न घर सुहाई॥
रत्नावलि मन लखन चाह। चले ससुर घर भरि उछाह॥

इस प्रसंग में मुरलीधर चतुर्वेदी की बात अधिक प्रामाणिक लगती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मुरलीधर चतुर्वेदी और गोस्वामीजी तथा रत्नावली के समय में करीब दो सौ साल का ही अंतराल है।

रत्नावली के प्रेम में पगे तुलसीदासजी पर देश-काल बाधा न बन पाया। वर्षा ऋतु, गंगाजी का तीव्र प्रवाह तथा आकाश में कड़कड़ाती बिजली, इनमें से कोई भी उनका पथ न रोक सका—'*नारि प्रेम मद गए भोइ। चले समय को ज्ञान खोइ।*' रत्नावली के बारे में जो प्रचलित वाद इस अवसर का है, वह भी 'रत्नावली चरित' के वर्णन से खंडित हो जाता है।

मुरलीधर चतुर्वेदी ने रत्नावली के कथन को इस प्रकार उद्धृत किया है—

कहि रत्नावलि प्राननाथ। धन्य आपको मिल्यो साथ॥
मेरे हित बहु दुःख उठाइ। दरस दयो तुम नाथ आइ॥
मो सम को बड़भागि नारि। मो सम को तिय पतिहि प्यारि॥
सौंम प्रेम तुम करी पार। नाथ प्रेम के तुम अधार॥
मम सुप्रेम निज हिये धार। उतरे प्रिय सुरसरित पार॥

जग अधार पद प्रेम धार। जातु मनुज भव उदधि पार॥
प्रेमहीन जीवन असार। नाथ प्रेम महिमा अपार॥
सुनि रत्नावलि भव्य बानि। भव विषयनु सो भई ग्लानि॥
भये बिस्मय तुलसिदास। कुछ जन सोचत भे उदास॥
रत्नावलि पति नींद जानि। गई परिस पद जोरि पानि॥

रत्नावली ने सहज भाव से मानुष प्रेम को भागवत् प्रेम की ओर प्रवर्तित किया। 'मानुष प्रेम भएउ बैकुंठी' जायसी ने लिखा। गोस्वामीजी भगवान के मुँह से कहलवाते हैं—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मन मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस एतनेहि माहीं॥

रत्नावली का शेष जीवन सिर्फ पति वियोग में आहत चित्त लेकर नहीं बीता। व्रत, नियम तथा स्त्री शिक्षा के प्रति उन्होंने अपने को समर्पित किया। निरंतर ईश्वराराधन में रत रत्नावली ७४ वर्ष की अवस्था में शरीर त्याग स्वर्गधाम गईं। मुरलीधर चतुर्वेदी लिखते हैं—

देती नारिन सीख नीक। रही दिखावति धरम लीक॥
पति वियोग महँ साधि जोग। त्यागि दये सब जगत भोग॥
चरन सदन रज जासु कोइ। भरत देह रुज रहित होइ॥
पू सर पू बरस पूरि। स्वर्ग गई तहि सुजस भूरि॥
धनि रत्नावलि मात धन्य। जेहि राम अब कहं जगत मन्य॥

रत्नावली के तप की महिमा का बखान करते हुए मुरलीधर लिखते हैं—"रत्नावली की तप-साधना के कारण ही उसके चरणों और उसके गृह की धूल को शरीर से लगाता है, वह रोग रहित हो जाता है।"

और अब रत्नावली की कुछ रचनाओं को देखते चलें। उनका जैसा जीवन है, वैसी ही कविता भी है। कविता कवि के जीवन के ताप से ऊष्मा ग्रहण करती हुई शब्द-विधान में ढलती जाती है, व्यक्तिगत दुःख का दंश जीवन को उच्च भावों के सोपानों पर ले जाता है, कविता को भी और फिर पाठक के जीवन को भी। प्रकाशित संकलन में दो सौ एक दोहे हैं। दोहे अपने रूपाकार में कवि से सांद्र जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति संपन्नता का वृत्त रचते हैं—

हाय सहज ही हों कही, लह्यो बोध हिरदेस।
हों रत्नावलि जँचि गई, पिय हिय काँच बिसेस॥

"मैंने अपनी बात तो सहजता से कही थी, हृदयेश ने उससे ज्ञान प्राप्त कर लिया। ज्ञान भी ऐसा कि उसके प्रभाव से मैं ही उनके हृदय में काँच के समान लगने लगी।" इस वेदना में अंतर्निहित जो व्यंजना है, उसकी ध्वनि तो एक बड़े गहरे उलाहने की ओर जाती है। कविता में अनकहा ही सार्थक बिंब रचता है। उलाहना तो उस ज्ञान के प्रति है, जिसके कारण हृदयेश ने मुझे ही काँच समझकर त्याग दिया।

वियोगजन्य दुःख बड़ा बेधक होता है। रत्नावली इस दुःख में भी स्वयं को भाग्यशाली मानती है। इस दोहे की व्यंजना देखें—

राम तासु हिरदे बसत, सो प्रिय मम उर धाम।
एक बसत दोऊ बसें, रतन भाग अभिराम॥

प्रेम के तत्त्व को वे कुछ इस प्रकार निरूपित करती हैं—

रतन प्रेम डंडी तुला, पला जुरे इक सार।
एक बाट पीड़ा सहै, एक गेह संभार॥

अर्थात् "जिस प्रकार तराजू के एक पलड़े में बाट रखा जाता है और दूसरे में उसी वजन की सामग्री रखी जाती है, उसी प्रकार दंपती में से एक (श्री तुलसीदास) बाट (मार्ग) के कष्टों को सह रहे हैं और दूसरी रत्नावली गृह झंझटों में लगी है।"

रत्नावली ने नीति एवं धर्म विषयक बहुत भावप्रवण शैली में दोहे लिखे हैं। कुछ एक दोहों में स्त्रियों के प्रति, उनके व्यवहार के प्रति प्रेरक वचन हैं। पाश्चात्य रीति से स्त्री के आत्म पर विचार करने वाले विमर्शकार इन दोहों से किंचित् विस्मित भी हो सकते हैं। इस विषय पर आधुनिक चिंतन जहाँ स्त्री और पुरुष को परस्पर प्रतिद्वंद्वी तथा कई बार वर्ग शत्रु के रूप में समझता रहा है, वहीं रत्नावली का स्त्री विषय-चिंतन स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संपूरक भाव की व्यंजना करता हुआ, इस संबंध में अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना को मूर्त रूप देता चलता है।

भारतीय स्त्री का आदर्श क्या हो सकता है? रत्नावली स्पष्ट शब्दों में आह्वान करती है—

रतन रमा सी सुख सदन, बनि सारद धरि ग्यान।
खलन दलन हित कालिका, बनि करि धारि कृपान॥

अर्थात् "हे स्त्री! तुम लक्ष्मी के समान गृह की शोभा स्वरूप बनो। ज्ञान प्राप्त कर शारदा बनो और दुष्टों के दमन के लिए हाथ में खड्ग लेकर कालिका बनो।"

जब हम यह ध्यान में रखेंगे कि रत्नावली का समय राजतंत्र पोषित लोलुप और आक्रामक आतंकवाद का समय था, तब इस दोहे का मर्म और भारतीय स्त्री का 'आत्म' समझा जा सकता है। इस मर्म को आज स्त्री की तथाकथित स्वतंत्र सत्ता के नाम पर उसे सिर्फ दैहिक अहं की सीमा में देखने वाले विमर्शकार नहीं समझ सकते।

'स्त्री' के संपूर्ण व्यक्तित्व में अंतर्निहित स्वत्वबोध की रक्षा और उसकी अभिव्यक्ति के निमित्त रत्नावली ने कई दोहे रचे हैं। इनमें पारिवारिक संबंधों के निर्वाह के साथ-साथ उसके सामाजिक संचरण के प्रसंगों के संदर्भ में कई सूत्र-संकेत हैं। एक दोहे में तो वे यहाँ तक कहती हैं कि स्त्री को अकेले किसी संत-महात्मा के पास भी नहीं जाना चाहिए—

कबहुँ अकेली जनि करहु, संतहु निकट पयान।
देखि अकेली तिय रतन, तजत संत हू ज्ञान॥

यह भक्तिकालीन स्त्री का स्वाभिमान से परिपूर्ण उदात्त स्वर है, जिसकी परख आधुनिक विमर्शकार भी कर सकते हैं।

रत्नावली ने कुछ गीत पद-शैली में भी लिखे हैं। इन गीतों में सर्वत्र बिछोह के मार्मिक स्वर हैं। बिछोह की व्यथा के बावजूद रत्नावली को यह संतोष है कि उनके प्रियपति भक्ति की ध्वजा के आधार-स्तंभ हैं, वे कहती हैं—

मोरे पिय समान कोइ ग्यानी।

आगम निगम पुरान ग्यान रवि जोति जगत प्रगटानी।
एक नारिव्रत राम भगतिरत धरम ग्यान-धन दानी॥
जिन धनि कर्यो सुकुल कुल उज्जल, प्रभु बराह रजधानी।
कौन पुन्य करि अस पति पाए, लखि लखि सदा सिहानी॥
हरष-विषाद सहित रतनावलि, अब मम बैस बितानी॥
कौन पाप करि भई वियोगिनी, विधि गति जाति न जानी॥

रत्नावली का शेष जीवन पति स्मृति, भगवद् भक्ति और स्त्री-जाति के प्रबोधन में बीता। कहते हैं कि उनकी तप:साधना से पवित्र उनके निवासस्थान की मिट्टी का लेपन; उसकी धूल का लेपन जो भी व्यक्ति अपने शरीर पर करता है, वह रोग रहित हो जाता है।

भारतीय नारी की जो आचार संहिता रत्नावली ने निर्मित की है, उसे अपने जीवन के व्याकरण से सिद्ध किया है, वह स्तुत्य है तथा आज के समय में पथ-प्रवर्तक है।

हिंदी विभाग
दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज
गोरखपुर (उ.प्र.)
दूरभाष : ७८००९८९३९८

आई.एस.एस.एन. क्रमांक-२५८१-६१७८

₹४०

शुद्ध श्रावण-अधिक श्रावण - २०८० जुलाई-२०२३

राष्ट्रधर्म

भारतीय लोकतंत्र का नव्य-भव्य मंदिर

राष्ट्रधर्म मासिक पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करने के लिए स्कैन करें

संस्थापक: पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

आई.एस.एस.एन. क्रमांक २५८१-६१७९

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ-शक्ति ध्रुवतारा है।
बने जगद्गुरु भारत फिर से, यह संकल्प हमारा है।

अनुक्रम

४ सम्पादकीय

६. गुरु पूर्णिमा का चाँद...

९. भारतीय लोकतंत्र का नव्य-भव्य...
डॉ. शैलेश कुमार मिश्र

१४. अठारह सौ सत्तावन की...
नित्यानंद श्रीवास्तव

कविता — १३. शुभंकरी
बद्रीविशाल राय

१७. भारतीय कृषि परम्परा में...
धनंजय सिंह

२०. स्वतन्त्र भारत में आयुर्वेद...
डॉ. मदन लाल ब्रह्मभट्ट

२६. धर्म की अवधारणा
अभय कुमार शुक्ल

३२. भारत को यूएन सुरक्षा परिषद...
डॉ. रिचर्ड बैंकिन

३५. प्रधानमंत्री मोदी और उनकी...
प्रणय कुमार

४१. हिन्दू कुल गौरव...
देवेन्द्र गुरु

४५. जलवायु परिवर्तन...
अनिल साहू

५४. संस्कारित छात्रशक्ति
आकाश अवस्थी

५७. पड़ोसी देशों में अभिशप्त...
डॉ. सुधाकर कुमार मिश्र

६०. एकात्म दर्शन के दीप्त...
डॉ. वेद मित्र शुक्ल

बोधकथा — ४०. न्यायाधीश का

कहानी — ५१. माई ऐसो पूत जण...
मदन मोहन पाण्डेय

विशेष

'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित सामग्री का उपयोग 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि०' किसी भी रूप में कर सकता है।

परामर्शदाता
आनंद मिश्र 'अभय'
डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त

सम्पादक
प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय
मो: ९४५०९३२२६५

सम्पादक मण्डल
डॉ. अमित कुशवाहा
डॉ. अमित उपाध्याय
डॉ. राजशरण शाही
डॉ. अनुज कुमार मिश्र
मानवेन्द्र नाथ पंकज

प्रभारी निदेशक
सर्वेश चंद्र द्विवेदी
मो: ९४१५१०७०५६

निदेशक
मनोजकांत
मो: ९४१५८५०४७८

प्रबंधक
डॉ. पवनपुत्र बादल
मो: ९४५०९३२११७

- लेखक के विचारों से सम्पादक एवं प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- किसी भी विवाद में न्यायक्षेत्र लखनऊ होगा।

आवरण-कथा : भारतीय लोकतंत्र का नव्य-भव्य मन्दिर

आवरण सज्जा
SASONE
लव कालरा
+91 9565155000

दूरभाष: (०५२२)- ४०४१५६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष: (०५२२)- २६१७३८४ (व्यवस्था)
editor_rdm_1947@rediffmail.com,
mgr.rdm.1947@gmail.com,
nideshakrdm@gmail.com
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ - २२६००४

वर्ष - ७६, अंक - ११
शुभ श्रावण-अधिक श्रावण २०८०, (युगाब्द - ५१२५)
जुलाई - २०२३
अंक मूल्य: रू ४०, वार्षिक : ₹ ४००
आजीवन (२० वर्ष) : ₹ ४०००
विदेश के लिए वार्षिक : ८० डॉलर

अठारह सौ सत्तावन की पृष्ठभूमि में आध्यात्मिक पथ

• निरंजन श्रीवास्तव

जो लोग अंग्रेजों के भारत पर आक्रमण को राजनैतिक और सामरिक समझते हैं, वे एक बड़ी गलती करते हैं। यह अभियान अपने समग्र रूप में व्यापारिक–साम्राज्यवादी आक्रमण और प्रभुत्व का ही है। इसे हमें स्पष्टतया समझ लेना चाहिए। इसी आक्रमण के घेरे में भारत आज भी है, तभी यह बात समझ में आयेगी। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं–

"भारत पर इंग्लैण्ड की विजय– जैसा हम लोग बचपन में सुना करते थे, ईसा मसीह या बाइबिल की विजय नहीं है और न पठान–मुगल आदि बादशाहों की विजय की भाँति ही है। ईसा मसीह, बाइबिल, राज–प्रासाद अनेक प्रकार से सजी–सजायी बड़ी–बड़ी सेनाओं का सगर्व कूच तथा सिंहासन का विशेष आडम्बर आदि– इन सबके पीछे असली इंग्लैण्ड विद्यमान है। इस इंग्लैण्ड की ध्वजाएँ पुतलीघरों की चिमनियाँ हैं, उसकी सेना व्यापारिक जहाज है, इसका लड़ाई का मैदान संसार का बाजार है और उसकी रानी स्वर्णांगी लक्ष्मी है।" स्वामी जी ने यह लेख उद्‌बोधन पत्रिका के मार्च १८९६ के अंक के लिए लिखा था। यानी १८५७ ई. के स्वातन्त्र्य समर के लगभग चार दशक बाद अंग्रेजों के क्रूर व्यापारिक साम्राज्यवादी तन्त्र की वास्तविकता एक लेख द्वारा इस रूप में रेखांकित की जाती है।

लेकिन १८५७ से पहले क्या दशा थी ? सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने बंगाल में अपना प्रभुत्व स्थापित किया। रामविलास शर्मा लिखते हैं, "१७६९–७० में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा।... इस अकाल में आबादी के लगभग एक–तिहाई लोग मारे गये और खेती का कारोबार भी लगभग एक–तिहाई नष्ट हो गया।... दुर्भिक्ष में मरने वालों की संख्या एक करोड़ आँकी गयी थी। फिर भी मालगुजारी दुर्भिक्ष के दौरान न केवल सख्ती से वसूली गयी वरन् उसमें सचमुच बढ़ोत्तरी भी हुई।"

इसी अत्याचार के विरोध की पृष्ठभूमि में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास आनन्द मठ की रचना की थी। इसी उपन्यास में क्रान्तिकारियों में अत्यन्त लोकप्रिय गीत 'वन्दे मातरम्' संकलित है। इसी कालखण्ड में परम्परागत व्यापारिक श्रेणियाँ एक–एक कर नष्ट की गयीं। शिल्पकार प्रताड़ित किये गये। मलमल के कारीगरों से लेकर धेचक का देशी टीका लगाने वाले वैद्य तक मारे गये। यह एक लम्बी दर्दनाक कहानी है। फिलहाल हम इन क्रूर व्यावसायिक साम्राज्यवादी अभियानों के प्रतिरोध के एक बहुत कम जाने गये कोण– १८५७ के आन्दोलन की बीज–भूमिका में रहे संन्यासियों की भूमिका के एक पक्ष को देखें।

इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन वासुदेव वर्मा ने अपनी किताब **'अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द'** में प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने स्वामी दयानन्द और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द के योगदान को जिस तरह रेखांकित किया है, उससे पता चलता है कि किस प्रकार भारत के साधु–सन्त और फकीर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अभियानों के प्रेरक, सूत्रधार और उसमें सक्रिय सहयोगी थे।

वर्मा जी ने १८५६ ईस्वी सन् में मथुरा के निकट जंगलों में एक बैठक का जिक्र किया है जिसमें स्वामी विरजानन्द जी केन्द्रीय भूमिका में थे। इस बैठक या पंचायत का विवरण मीर मुश्ताक मिरासी नाम के सज्जन ने लिखा है। इसका लिप्यंतरण करते हुए वर्मा जी उद्‌धृत करते हैं, **"जब महात्मा विरजानन्द को पालकी में बिठाकर लाया गया, उस वक्त हिन्दू–मुसलमान फकीरों**

ने उनकी खुशी में शंख, घड़नावल, नामफणी, निकाड़ा, तुरही और नरसिंघे बजाए थे और खुदापरस्ती और वतनपरस्ती के गीत गाये थे। यह नाबीना (अंधा) साधु गैर इल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे–जलाल इसकी जबान से जाहिर होता था। मैंने भी अपनी रूह के तकाजे के मुताबिक पाँच फूल इनके सामने पेश किये और उनकी कदमबोसी की तथा खुदा से दुआ माँगी कि खुदा, ऐसी नेक रूहों को खलकत की भलाई के लिए हमेशा पैदा कीजिये।" यह सभा चार दिन चली थी। इस सभा में नानासाहब, अजीमुल्ला और बहादुरशाह के एक पुत्र भी थे।

मीर मुश्ताक मिरासी ने स्वामी विरजानंद के भाषण को उद्धृत किया है। प्रसंगानुसार उसका एक अंश देखें– "मैं सब बाशिंदगान हिंद से इलतजा करता हूँ कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं, उतना ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वह वतनपरस्त बने और मुल्क के हर बाशिंदे को भाई–भाई जैसी मुहब्बत करे, तब तुम्हारे दिलों के अंदर वतनपरस्ती आ जायेगी, तो इस मुल्क की गुलामी यहाँ से खुद–ब–खुद जुदा हो जायेगी।"

मीर मुश्ताक का यह वर्णन मुजफ्फरनगर के बालायन (बालियान) खाप के ग्राम सोरम की पंचायत के रिकार्ड में है। इसी के रिकार्ड का हवाला देते हुए सत्यकेतु विद्यालंकार ने बताया है कि "अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई की तैयारी के लिए पहली सभा १८५५ के आरम्भ में हरिद्वार में हुई थी। दूसरी सभा उसी साल अक्टूबर में गढ़गंगा के मेले के अवसर पर, मेले से कुछ दूर आयोजित की गयी थी। इस सभा में ढाई हजार लोग उपस्थित थे। स्वामी पूर्णानन्द इसके प्रधान थे और साईं फखरुद्दीन उपप्रधान।"

सत्यकेतु विद्यालंकार को उद्धृत करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, "स्वामी पूर्णानन्द ने जो भाषण दिया, उसका सारांश मौलवी जहीर अहमद ने लिखा है– "मुल्क को फिरंगी के भरोसे मत छोड़ो। वे बेदीन हैं। इनका कोई कौल फैल नहीं है। ये राजा नहीं बल्कि तिजारती लुटेरे और जरपरस्त हैं। ये हमारे मुल्क की तमाम मखलूक के हर इन्सान की जिन्दगी के दुश्मन हैं और ये तुम्हारा खून और गोश्त खा जायेंगे। इनसे बचो। ये तुम्हारी नस्लों को नेस्तनाबूद कर देंगे। इन्हें अपने मुल्क से निकालो।"

जहाँ तक नस्लों को नेस्तनाबूद करने की बात है तो इसका प्रमाण तो उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका और आस्ट्रेलिया आदि के निवासी हैं। अफ्रीका के कई देश भी इसके प्रमाण हैं और सबसे बड़ा प्रमाण तो अपना यह देश भारत ही है। जहाँ उनकी कोशिशें भाषाई विवादों, आर्य आक्रमण–आगमन के सिद्धांतों तथा नकली आधार पर विभेदात्मक प्रपंचों को रचने में आज भी जारी है।

स्वाधीनता संग्राम की योजना ओमानन्द और पूर्णानन्द द्वारा तैयार की गयी थी, पर उसे क्रियान्वित करने में स्वामी विरजानन्द का कर्तृत्व अत्यंत महत्त्व का था। इस प्रकार गुरु–शिष्य परम्परा की तीन पीढ़ियों ने स्वाधीनता संग्राम के आयोजन में भाग लिया था। सन् १८५७ में स्वामी ओमानन्द १६० वर्ष के, स्वामी पूर्णानन्द ११० वर्ष के थे। स्वामी विरजानन्द उस समय ७६ वर्ष के थे।

दुर्भाग्य से कतिपय वामपन्थी विचारक इस अभियान में आज भी उनके सहयोगी बने हुए हैं। दुःखद पक्ष तो अम्बेडकरवादी नव बौद्धों का है जो इसी नस्ली विमर्श में उलझकर भगवान बुद्ध की मूल शिक्षा से अपरिचय की स्थिति में है।

बहरहाल, अंग्रेजों के विरुद्ध सशक्त प्रतिरोध के लिए कुछ निश्चयात्मक सूत्र तलाशे जा सकें। इस निमित्त १८५५ में ही तीसरी सभा भी हरिद्वार में हुई। इसे भी स्वामी पूर्णानन्द ने आयोजित किया था। इसमें ५६५ साधु जिनमें १६५ मुसलमान साधु थे। इसी सभा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानानन्द भी थे और साथ ही गोलमुख वाले स्वामी दयानन्द भी।

रामविलास शर्मा ने इस सम्बन्ध में एक मर्मस्पर्शी तथ्य का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, "सोरम पंचायत के रिकार्ड में पूर्णानन्द के गुरु ओमानन्द का उल्लेख है।... स्वाधीनता संग्राम की योजना 'ओमानन्द और पूर्णानन्द द्वारा तैयार की गयी थी, पर उसे क्रियान्वित करने में स्वामी विरजानन्द का कर्तृत्व अत्यंत महत्त्व का था। इस प्रकार गुरु–शिष्य परम्परा की तीन पीढ़ियों ने स्वाधीनता संग्राम के आयोजन में भाग लिया था। सन् १८५७ में स्वामी ओमानन्द १६० वर्ष के, स्वामी पूर्णानन्द ११० वर्ष के थे। स्वामी विरजानन्द उस समय ७६ वर्ष के थे। १८५६ में इन्होंने मथुरा में जो भाषण दिया, उसका सारांश मिरासी ने लिखा था।"

इन सभाओं में नानासाहब, अजीमुल्ला और बहादुर शाह जफर के एक पुत्र भी थे। स्वामी पूर्णानन्द, स्वामी विरजानंद और साईं फखरुद्दीन के नेतृत्व में चलने वाली इन सभाओं में स्पष्ट रूप से १८५७ की क्रान्ति के सूत्र सृजित किये गये थे। स्वामी विरजानन्द ने अपने भाषण में कहा भी था, 'हिन्द के रहने वाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहंशाह है।" दिल्ली की गद्दी को संत–शक्ति का सक्रिय समर्थन था। हजारों साधु और फकीर इस काम में लगे, अपने को होम कर दिया।

संत शक्ति के उस सक्रिय नेतृत्व के कारण ही बहादुरशाह

जफर, अवध की रियासत और अन्त में देशी रियासतों जैसे झाँसी आदि इस स्वातन्त्र्य समर में कूद पड़े।

इस स्वातन्त्र्य समर के पीछे जो आध्यात्मिक तेज था, उसकी ध्वनि रियासतों द्वारा जारी किये गये घोषणापत्र में देखी जा सकती है। *सावरकर बताते हैं, "दिल्ली के बादशाह द्वारा स्वराज्य–स्थापना के लिए जारी घोषणापत्र में कहा जाता है– हिन्दवासियों, यदि हम सब मन में ठान लें तो शत्रु को क्षण भर में धूल चटा सकते हैं और अपने प्राणप्रिय धर्म एवं प्राणप्रिय देश को पूरी तरह भयमुक्त कर सकते हैं।" सावरकर जी इस वाक्य को दिव्य एवं स्फूर्तिजनक मंत्र बताते हुए इसी में १८५७ की क्रान्ति के बीज–भाव को देखते हैं।* यहाँ हम इस बीज–भाव के पीछे इस आध्यात्मिक तेज का स्मरण कर सकते हैं, जिसका इस दिशा में प्रवर्तन स्वामी पूर्णानंद, स्वामी विरजानंद एवं साईं फखरुद्दीन की समाओं से हुआ था।

सावरकर अवध के नवाब द्वारा निकाले गये एक दूसरे आज्ञा पत्र को उद्धृत करते हैं, "हिन्दुस्थान के सारे हिन्दुओं और मुसलमानों, उठो ! स्वदेश बंधुओं, परमेश्वर की दी हुई सौगात में सबसे श्रेष्ठ सौगात स्वराज्य ही है। यह ईश्वरीय सौगात जिसने हमसे छल से छीन ली है, उस अत्याचारी राक्षस को वह बहुत दिन पचेगी क्या ?... अंग्रेजों ने इतने जुल्म ढाए हैं कि उनके पाप के घड़े पहले ही लबालब भरे हुए हैं... इसलिए फिर से एक बार मैं सारे हिन्दू बन्धुओं का आह्वान करता हूँ, उठो और इस परम ईश्वरीय और दिव्य कर्त्तव्य के लिए रण–मैदान में कूद पड़ो।"

स्वधर्म के लिए जागरण और स्वराज्य की प्राप्ति– इन दो तत्त्वों ने वाकई उन दिनों चमत्कार किये। सावरकर श्री समर्थ रामदास को उद्धृत करते हैं, "श्री समर्थ रामदास ने महाराष्ट्र को ढाई सौ वर्ष पहले वही दीक्षा दी थी– "धर्मासाठी मरावें, मरोनि अवध्यांसि मारावें। मारिता मारिता ध्यावें, राज्य आपुलें।" यानी–

"धर्म हेतु मरें, मरते हुए सारों को मारें।

मारते–मारते जीतें, राज्य अपना।"

१८५७ की क्रान्ति के पीछे जो आध्यात्मिक नेतृत्व था, वह पंथगत मान्यताओं को जिस राष्ट्रीय वृत्ति से संयुक्त कर प्रेरक शक्ति के रूप में उभरा– रोटी और कमल इस अभियान के प्रतीक बने। हजारों हिन्दू साधु और मुस्लिम साधु इस अभियान में लगे। भारत के सम्पूर्ण उत्तरापथ को इन संन्यासियों ने राष्ट्र–दूत बनकर मथ डाला। उनमें से किसी का नाम राजकीय रिकार्ड में संभवतः हो तो हो। सामान्य जन उन्हें नहीं जानते।

इस स्वातन्त्र्य–समर के विफल होने के बाद कंपनी राज की जगह इंग्लैण्ड के राजा–रानी का हस्तक्षेप प्रमुख भूमिका में आया। बड़ी चालाकी से दूरगामी योजना के तहत स्वातन्त्र्य के समर को नेस्तनाबूद किया गया। हिन्दू और मुसलमान जिस आध्यात्मिक आभा से आलोकित होकर स्वधर्म और स्वराज्य की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध होकर एकत्र हुए थे – उस पूरे अधिष्ठान को सिर्फ राजनीतिक – सामाजिक बना दिया गया। कांग्रेस का गठन इन विभेदकारी तत्त्वों को प्रसारित होने से रोक नहीं पाया। संतों की दिशा जागरण के अन्य पक्षों को अपने अभियान–पथ में लेकर आगे बढ़ी– जैसे शिक्षा, गोपालन आदि के सन्दर्भ।

इस पूरे प्रसंग से अनेक विमर्श निकलते हैं। पहला तो यह भारत की आध्यात्मिक चेतना स्वराज्य और स्वधर्म के विषय को लेकर बहुत स्पष्ट है। कहीं भी दुविधाग्रस्त नहीं है। अंग्रेजों ने इसी मर्म पर प्रहार किया है। कांग्रेस की मूल चेतना सिर्फ राजनीतिक रही है– इस कारण स्वामी विरजानन्द और साईं फखरुद्दीन की परम्परा नेपथ्य में चली गयी। सिर्फ राजनीतिक बुद्धि रहने के कारण विभेद के वातावरण सँभाले नहीं जा सके। परिणाम में लाखों भारतवंशियों का रक्त–बहा, बँटवारा हुआ तथा स्वराज्य और स्वधर्म के विषय विलुप्त होते गये।

यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण बात है। *१८५७ की क्रान्ति के सूत्रधार संन्यासियों की शारीरिक अवस्था देखें। स्वामी ओमानन्द १६० वर्ष के, स्वामी पूर्णानंद ११० वर्ष के और स्वामी विरजानन्द ७६ वर्ष के... । अब नेहरू की यह स्वीकारोक्ति पढ़ें, "१९६० में लेओनार्ड मोस्ले से बातचीत करते हुए नेहरू ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था– सच्चाई यह है कि हम थक चुके थे और आयु भी अधिक हो गयी थी। हममें से कुछ ही लोग फिर से कारावास में जाने की बात कर सकते थे और यदि हम अखण्ड भारत पर डटे रहते, जैसा कि हम चाहते थे तो स्पष्ट है कि हमें कारागार में जाना ही पड़ता। हमने देखा कि पंजाब में आग भड़क रही है और सुना कि प्रतिदिन मारकाट हो रही है। बँटवारे की योजना ने एक मार्ग निकाला और हमने उसे स्वीकार कर लिया।"*

१८५७ में कहाँ से चले थे तथा १९४७ में कहाँ तक पहुँचे ! यह हृदयविदारक दृश्य हमने आध्यात्मिक चिति के विस्मरण से ही अपने ऊपर आरोपित कर लिया है। भारत के सभी उपासना पंथों के शीर्ष–पुरुष तथा आमजन स्वधर्म और स्वराज्य के प्रश्न पर पुनः राष्ट्रीय–वृत्ति से सम्पन्न हों– यह आवश्यकता आज भी है।

यह सोचें कि भारत महासमर में अनिवार्यतः आज भी है।

प्रोफेसर हिन्दी, दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज,
गोरखपुर (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५२८४७३२९

आई.एस.एस.एन. क्रमांक-२५८१-६१७६

₹४०

राष्ट्र धर्म

भाद्रपद - २०८० सितम्बर-२०२३

राष्ट्रधर्म

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

श्रीराम-सुयश

राष्ट्रधर्म मासिक पत्रिका की सदस्यता प्राप्त करने के लिए स्कैन करें

शिव-शक्ति स्थल

हिन्दू कुलगौरव

संस्थापक: पं. दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्रधर्म

आई.एस.एस.एन. क्रमांक २५८१–६१७६

राष्ट्रधर्म तो कल्पवृक्ष है, संघ–शक्ति ध्रुवतारा है।
बने जगद्गुरु भारत फिर से, यह संकल्प हमारा है।

अनुक्रम

४ सम्पादकीय

७. देश, समाज, धर्म के लिए...
सुरेश जोशी 'भैयाजी'

११. भक्ति चेतना का भारत...
आचार्य चंदन कुमार

१४. पूर्वोत्तर में रामकथा
डॉ. मुनीन्द्र मिश्र

१७. नारी अस्मिता की...
प्रो. करुणा गुप्ता

२१. श्रीराम–सुयश के तट पर
आचार्य मिथिलेशनन्दिनीशरण जी महाराज

२३. प्रतीक्षा के महानायक...
आनन्द कुमार सिंह

२५. चिन्तन का भारत–भाव
नित्यानन्द श्रीवास्तव

२८. राम की सर्वव्यापकता...
डॉ. कुमार आदित्य

३०. मानव निर्मिति के शिल्पकार...
मान. दत्तात्रेय होसबाले

३९. मनगढ़ंत आधार पर...
अखिलेश सिंह

४२. डिजिटल इंडिया...
मनमोहन पुरोहित

४५. जीवन की सार्थकता
डॉ. विद्यानिवास मिश्र

५१. भाषायी अस्मिता और...
प्रो. सदानन्द प्रसाद गुप्त

५७. धार्मिक पर्यटन का आर्थिक...
जयवीर सिंह

५९. अफसोस...मैं गीदड़...
विजय मनोहर तिवारी

बाल–वीथी
३४. होईहै वही जो...
नीलम राकेश

कथा
३७. सत्संग की संवेदना
रामजी तिवारी

कविताएँ

५. चाँद नहीं यदि...
सोनरूपा विशाल

१०. मधुरा...
डॉ. वेद मित्र शुक्ल

१३. बूँद
पंकज त्रिपाठी

१३. भोला ही तो...
आचार्य मिथिलेशनन्दिनीशरण

२७. चल पड़े अपनी डगर
राघव शुक्ल

३३. हे, महाप्रस्थान पर...
मनोजकान्त

विशेष

'राष्ट्रधर्म' में प्रकाशित सामग्री का उपयोग 'राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि०' किसी भी रूप में कर सकता है।

परामर्शदाता
आनंद मिश्र 'अभय'
डॉ. सदानंद प्रसाद गुप्त

सम्पादक
प्रो. ओमप्रकाश पाण्डेय
मो: ९४५०९३२२६५

सम्पादक मण्डल
डॉ. अमित कुशवाहा
डॉ. अमित उपाध्याय
डॉ. राजशरण शाही
डॉ. अनुज कुमार मिश्र
मानवेन्द्र नाथ पंकज

प्रभारी निदेशक
सर्वेश चंद्र द्विवेदी
मो: ९४१५१०७०५६

निदेशक
मनोजकांत
मो: ९६९६०१५३११

प्रबंधक
डॉ. पवनपुत्र बादल
मो: ९४५०९३२११७

- लेखक के विचारों से सम्पादक एवं प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
- किसी भी विवाद में न्यायक्षेत्र लखनऊ होगा।

आवरण : निर्माणाधीन श्रीराम जन्मभूमि मंदिर, छत्रपति शिवाजी महाराज और चन्द्र पर चन्द्रयान-3

आवरण सज्जा
SASONE
लव कालरा
+91 9565155000

दूरभाष: (०५२२)– ४०७४१६४ (सम्पादकीय)
दूरभाष: (०५२२)– २६९१७८४ (व्यवस्था)
editor_rdm_1947@rediffmail.com,
mgr.rdm.1947@gmail.com,
nideshakrdm@gmail.com
संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, लखनऊ – २२६००४

वर्ष – ७७, अंक – १
भाद्रपद–२०८० (युगाब्द – ५१२५)
सितम्बर – २०२३
अंक मूल्य: रू ४०, वार्षिक : रू ४००
आजीवन (२० वर्ष) : रू ४०००
विदेश के लिए वार्षिक : ८० डॉलर

चिन्तन का भारत-भाव

(संसय बिहग उड़ावन हारी)

नित्यानन्द श्रीवास्तव

मनुष्य की सामान्य सोच में भी 'कुछ बनने' का भाव रहता है। माता–पिता, गुरु, मित्र–सम्बन्धी तथा समाज–परिवार का कोई भी व्यक्ति इस चिंतन से मुक्त नहीं है। सबकी सोच बनने पर ही है, बिगड़ने पर नहीं। कोई नहीं सोचता कि मेरी संतान, मेरा शिष्य, मेरा मित्र–सम्बन्धी, परिचित या अपरिचित बिगड़ जाये। यहाँ उन लोगों की बात नहीं हो रही है, जो अपना प्राण देकर भी अमंगल ही सिद्ध करते हैं। ऐसे लोगों के लिए गोस्वामी जी ने लिखा भी है–

हरि हर जस राकेस राहु से।
पर अकाज भट सहसबाहु से।
जे पर दोष लखहिं सहसाखी,
परहित घृत जिन्ह के मन माखी।–

तो, ऐसे खल व्यक्तियों की इस प्रसंग में जरूरत नहीं है। सावधानी यह जरूरी है कि 'खल', व्यक्ति के रूप में भी सामने आता है और 'खलता' खलधर्म के रूप में, एक समूह के मानोभावों के रूप में भी प्रकट होती है।

अब यह 'बनने' का जो विषय है, उसकी प्रारम्भिक रूपरेखा क्या है ? सामान्यतः यह पद, प्रतिष्ठा और धन–संग्रह तथा प्रदर्शन के रूप में समझा जाता है, इन सबके लिए आवश्यक–अनावश्यक भागदौड़ की जाती है, इच्छित वस्तु प्राप्त कर भी ली जाती है और प्रतिफल के रूप में मन डूबता जाता है, प्राप्ति के मद में अपने स्वायत्त, स्वाधीन व्यक्तित्व का विलोपन करके भी।

किसी भी वस्तु की प्राप्ति के बोध को मद कहते हैं। कभी भारतीय चिंतन में इसे दोष समझा जाता रहा है लेकिन आज की ब्रांडिंग और विज्ञापनी तेवर वाली समझ में इसे 'कौशल' से समझा जाता है। इसी 'कौशल' का प्रयोग तमाम व्यक्ति–सत्ता केन्द्रों से होता रहा है– अपने देश पर हुए आततायी परकीय आक्रमणों और आक्रमणकारियों के मन का विश्लेषण करें, तो इसे आसानी से समझा जा सकता है।

गोस्वामी जी ने मन की इन उलझनों को बहुत ठीक प्रकार से निरखा–परखा और अभिव्यक्त किया है। वे देख रहे हैं कि समग्र

प्राप्तियों के बाद भी मनुष्य का मन प्रसन्न नहीं है। उनके पास मन के इस कलियुग के लिए समाधान का एक रास्ता तो है। विनयपत्रिका में वे लिखते हैं–

जौ पै राम–चरन–रति होती।
तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती।
जो श्रीपति–महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए।
तौ कत द्वार–द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए।।

यानी यदि श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रीति होती, तो रात–दिन विपत्तियों के प्रभावस्वरूप तीनों प्रकार के कष्ट क्यों सहते ? यदि हम भगवान की महिमा का विचार कर भावभक्ति से उनका भजन करते, तो आज कुत्ते की तरह द्वार–द्वार पेट दिखाते हुए क्यों मारे–मारे फिरते ?

तुलसी साहित्य में इस तरह के ललकार के स्वर बहुत हैं। यह ललकार सामूहिक संताप के कारण बिखरे–बिखरे समाज के प्रति भी है और आततायी आक्रमणकारी तथा विध्वंसकारी विदेशी (तात्कालिक) शक्तियों के प्रति भी। भारतीय समाज का एक वर्तमानकालिक चित्र वे भगवान के सामने रखते हैं–

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव, दुवार पुकारत आरत, सबकी सब सुख हानि भई है।।
प्रभु के बचन वेद बुध सम्मत मम मूरति महि देव मई है।
तिनकी मति रिस राग मोह–मद लोभ लालची लीलि लई है।।
राज समाज कुसाज कोटि कटु कलपित कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतुवाद हठि हेर हई है।।
आस्रम बरन धरम बिरहित जग लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप रत, अपने–अपने रंग रई है।।

यह लोकाभिरामत्व क्या है ? यह समष्टि सत्ता का एकात्म भाव में पल्लवन है। यह एकात्मता का सूत्र है– जहाँ समाज के सभी वर्ग के लोग समस्त वर्ग लिंगादिभेद से परे एक ही परमसत्ता के अनुसंधान में रत रहते हैं। भारत की इसी समष्टि चेतना ने विराट् पुरुष की बृहत्तम संकल्पना प्रस्तावित की।

यानी "हे प्रभु ! पाप, दरिद्रता और दुःख– इन तीनों तापों से दुनिया जली जा रही है। यह आर्त्त आपके द्वार पर पुकार रहा है। देखिए, सभी का हर प्रकार से सुख जाता रहा। वेदों और पंडितों की सम्मति है और आपने भी स्वयं श्रीमुख से कहा है कि ब्राह्मण मेरी ही प्रतिमूर्ति हैं, अर्थात् वे ब्रह्ममय हैं– पर उनकी बुद्धि को क्रोध, राग, मोह, अहंकार, लोभ और लालच ने निगल लिया है, उनमें सम, संतोष, दया और धर्म आदि तो रहे नहीं, उलटे वे कामी, क्रोधी, मूढ और लोभी हो गये हैं। इसी तरह राजसमाज करोड़ों बुरी बातों से भर गया है। वे लूटना, मारना, परस्त्री एवं परधन अपहरण करना, अन्याय करके प्रजा को सताना आदि नित्य नई–नई पापपूर्ण चालें चल रहे हैं। सर्वत्र नास्तिकता का प्रसार हो गया है। संसार में न तो आश्रम धर्म रहा है और न वर्ण धर्म ही। प्रजा का ह्रास हो रहा है। वह पाखंड और पाप में लिप्त हो रही है। सभी अपने रंग में मस्त हैं, अथवा मनमुखी हो गये हैं, कोई किसी की नहीं सुनता।

'कोई किसी की नहीं सुनता', यह तो आज का सच भी है। सब अपनी–अपनी ही सुना रहे हैं। एक लम्बे अन्तराल के बाद जब देश के अन्दर भारत–भाव प्रदीप्त हो रहा है– आसुरी शक्तियाँ भी उतने ही वेग से सन्नद्ध हो रही हैं। मनुष्य के मन का आसुर भाव मनुष्य को बाँटने में लगा है। जाति, मत, सम्प्रदाय जैसे शब्दों के मूल अर्थ को मन का आसुर–भाव या राक्षस–भाव विकृत करता है।

गोस्वामी जी ने रामकथा को जिस रूप में रखा है, उससे मन का राक्षसभाव नष्ट होता है। यह रामचरित उस नितांत विपरीत समय में, आने वाले समय में ब्राह्मण–श्रमण धर्म के लिए उसके नवजागरण के लिए आधारभूमि तैयार कर रहा था, इसे हमें आज समझने की जरूरत है। आज आवश्यकता है कि हम सभी भारतवासियों की चिंतन पद्धति में, चिंतन के सारे आयामों में 'देश–राग' अधिष्ठान का काम करे। देखिए, गोस्वामी जी उस समय राष्ट्रीयवृत्ति को किस प्रकार झकझोरते हैं– ललकारते हैं, उसे सन्नद्ध करते हैं–

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो।
अगम जो अमरनि हूँ को तनु तोहि दियो।
दियो सुकुलजनम, सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद, पावत पुरारि मुरारि को।।
यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमतिकायर कलपवल्ली चहति, विषफल फली।

यह भरतखंड यानी भारतवर्ष सत्कर्मों के सम्पादन की भूमि है। ये सत्कर्म शुभता के हैं, पावनता के हैं। यह अधिकारभूमि नहीं कर्त्तव्यभूमि है। इस भूमि की विशिष्टता अकारण श्रेष्ठतावाद या मोहबद्ध श्रेष्ठतावाद में नहीं है। विदेशी आक्रमणों और आतंकी अभियानों के मूल में यह मोहबद्ध श्रेष्ठतावाद ही है। यही कारण है कि रामकथा ने लोक की प्रतिष्ठा की। विशिष्टताबोधक अहंकार की नहीं। यहाँ तो राम भी लोकाभिराम हैं। एक स्तोत्र में कहा गया–

लोकाभिरामं रणरंगधीरं, राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरंतं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये।

यह लोकाभिरामत्व क्या है ? यह समष्टि सत्ता का एकात्म भाव में पल्लवन है। यह एकात्मता का सूत्र है– जहाँ समाज के सभी वर्ग के लोग समस्त वर्ग लिंगादिभेद से परे एक ही परमसत्ता के अनुसंधान में रत रहते हैं। भारत की इसी समष्टि चेतना ने विराट् पुरुष की बृहत्तम संकल्पना प्रस्तावित की। यह विराट् पुरुष सबके

नित्य सम्बन्ध से बनता है। समाज में सभी व्यक्तियों में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, प्रान्त आदि विविधताओं के रहते हुए भी यह समवाय का जो सूत्र है– नित्य सम्बन्ध की जो प्रविधि है, उसे रामकथा प्रवर्तित करती है।

गोस्वामी जी एक और बड़ी सुन्दर बात राष्ट्रीय वृत्ति के एकात्मक सूत्रों को सुलझाते हुए लिखते हैं–

भलि भारतभूमि, भले कुलजन्म समाज सरीरु भलो लहिकैं।
करषा तजि कैं, परुषा बरषा हिम मारुत घाम सदा सहिकैं।।
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहिकैं।
न तु और सबै विष–बीज बये हर हारक कामदुघा नहिकैं।।

यानी, "सुन्दर भली भारत भूमि में जन्म पाकर, समाज और शरीर भी भला पाकर, क्रोध छोड़कर, वर्षा, हिम, हवा और धाम सदा सहकर जो चातक की तरह हठ करे, भगवान की शरण में, उसी का जीवन धन्य है, नहीं तो बाकी लोग तो सोने के हल में कामधेनु जोतकर विष का बीज बोते हैं।"

'विष का बीज बोना' यानी भेदों, विभाजनों के वृक्ष खड़े करना। नित्य सम्बन्ध और एकात्मभाव के सूत्रों को भूलना। विराटपुरुष की परमचेतना–सम्पन्न मूर्ति को खंडित करना। भारतमाता के चित्र को विशृंखलित करना।

तो, जोड़ना है भारत–भाव को। तोड़ना है अपनी कमजोरियों की लौह–शृंखलाओं को। स्मरण रखना है भली भारतभूमि के ऋण को और यह सब सिद्धांत कथन से नहीं होगा– कर्तृत्व से सधेगा।

परमपूज्य डॉ. हेडगेवार जी के जीवन का एक प्रसंग है– "यद्यपि डॉक्टर जी का पुस्तकवाचन थोड़ा ही था, किन्तु जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वाध्याय करना पड़ता है, वह इतने मात्र से ही सिद्ध हो गया था कि रामदास के कथन "उगीच करिती बड़बड़। परि करूनि दाखविणें हे अवघड।।" का सार डॉक्टर जी ने पहचान लिया था इसलिए पढ़ी हुई बात को कृति में परिणत करने की आकांक्षा लेकर ही वे जीवन भर चले। केवल पठित–पाण्डित्य का कोरा सन्तोष उन्हें रुचिकर नहीं था। 'यः क्रियावान स पण्डितः' इस कोटि में वे अग्रगण्य थे।

तो कुछ बनने के बाद बहुत कुछ करना होता है। यही चिंतन का भारतभाव है, जिसे गोस्वामीजी बार–बार कहते हैं।

चलभाष : ९४५२८४७३२८

चल पड़े अपनी डगर

राघव शुक्ला

नैन में हैं अश्रु गीले
राह में काँटे नुकीले
पाँव में हैं घाव गहरे
छाँव पाकर भी न ठहरे
लादकर काँधे पे अपने दर्द दुःख सारे
चल पड़े अपनी डगर गुमनाम बंजारे

दोष सारे सिर चढ़ाकर
भार चिन्ता का उठाकर
ओढ़कर अवसाद तन पर
वेदना के वसन मन पर
देह है जर्जर भटकते हैं थके हारे
चल पड़े अपनी डगर गुमनाम बंजारे

होंठ पर ताले लगाकर
दाँत में उंगली दबाकर
पत्थरों से चोट खाये
घाव पर माटी लगाये
पार करके संकटों के सिंधु सब खारे
चल पड़े अपनी डगर गुमनाम बंजारे

पीर को उर में सम्हाले
विघ्न के उपवीत डाले
लेपकर दुर्भाग्य चन्दन
चूमकर हर एक बन्धन
छेड़ते हैं गीत के अंजान इकतारे
चल पड़े अपनी डगर गुमनाम बंजारे

Impact Factor : 5.132 UGC Serial No. 42685
Registration No. 206 ISSN :- 2348-6228

CURRENT JOURNAL

Journal For All Research

An International Peer Reviewed Research Refereed Quarterly Journal

Editor in Chief
Prof. J. N. Singh
Department of Sociology
Faculty of Social Science
Banaras Hindu University
Varanasi

Editor
Dr. Rajeev Kumar Srivastava
Dept. of History
Faculty of Social Science
Banaras Hindu University
Varanasi

Volume 8 No. -30 (Jan. to March, 2023

Published by
Vishal Bharat Sansthan
Varanasi (U.P.) India

CONTENT

➢	वैश्वीकरण : एक नये समाज निर्माण की ओर **(Globalization : Towards Building a New Society)**	.....	**1-4**
➢	चन्द्रकांता के साहित्य में सांस्कृतिक जीवन अजय कुमार	.....	**5-7**
➢	चन्द्रगुप्त : समकालीन प्रतिबद्धता *डॉ0 रामाश्रय सिंह*	.....	**8-10**
➢	अमरकांत के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना *डॉ0 अनुकूलचंद राय*	.....	**11-14**
➢	**The poetry of Harindranath Chattopadhyay, A study** **Dr.Sujeet Kumar Singh**	....	**15-16**
➢	**जनपद फतेहपुर में ग्रामीण सड़कों का विकास: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** **कुलभूषण मौर्य**	....	**17-23**
➢	ग्रामीण सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभावः (ग्राम – दानियलगंज जिला हरदोई के संदर्भ में) डॉ0 अरुण कुमार मौर्य ईश्वर दीन	....	**24-32**
➢	साठोत्तरी हिन्दी कविता में पर्यावरण संकट दीपा कुमारी	....	**33-36**
➢	**Impact of Privatization in India** **Dr. Sanjeew Kumar Singh**		**37-40**

ISSN : 2348-6228/Vol.8/No.30 UGC Serial No. 42685

Impact of Privatization in India

Dr. Sanjeew Kumar Singh*

Privatization describes the process by which a piece of property or business goes from being government owned to being privately owned. Note that privatization also describes the transition of a company from being publicly traded to becoming privately held. This is referred to as corporate privatization.

"Privatization is the process of participation of private sector in the ownership and management of public sector".

The "privatization" also have been used to describe two unrelated transactions. The first is a buyout, by the majority owner, of all shares of a public corporation or holding company's stock, privatizing a publically traded stock, and after described as private equity. The second is a demutualization of a mutal organization or corporative to form of point stock company.

Privatization in India:

In 1991 India made some major policy changes in their economic ideologies. There were stagnation and slow growth in the economy.

To tackle these problems the, then finance Minister **Dr. Manmohan Singh** introduce under the guidance of P.M. **Mr. P.V. Narshimbha Rao** some major economic reform. Now, we call it the liberalization of the Indian economy and the LPG reforms [Liberalization, Privatization, Globalization].

Privatization has very broad meaning in economics. Every thing that ranges from the introduction of private capital to selling government owned assets to transitioning to a private company.

6 industries are Nat reserved for Private Sectors:

- Cigarette
- Atomic Energy
- Indian Railways
- Chemical Fertilizers
- Arms and Ammunition
- Hazardous Chemicals

Examples:

- BSCS was Privatized today it is owned by reliance energy.
- Telephone companies now are owned by private companies also.
- Hindustan and Bharat Petroleum planning to be a part of Oman oil company to have a great supply of oil to India in lower price.
- A significant development in public private partnership is the lease of toll roads, bridges and tunnel by state and local governments to private contractors. Mundra Port in Gujrat has become a highly efficient and well managed major ports in 10 years.

* (Asst. Prof. Divijay Nath P.G. College Gorakhpur

- ICICI bank is the country's largest private bank in second place after the SBI.

Advantages of Privatization:

1. **Financial Resources:-** The main advantages of privatisation is to generate financial resources for the Govt. in under to generate resources disinvestment of public sector enterprises.
2. **Optinum Utilization of resources:-** It has been observed that the public sector has failed the optimal use of national resources.
3. **Pestering competition:-** Most of the public enterprises enjoy the status of monopoly. It results in inefficiency and losses. Privatization creates a situation of competition for public enterprises and they are forced to improve their efficiency.
4. **Reduce Fiscal Burden:-** Privatization reduces the fiscal Burden of the State by relieving it of the losses of the public enterprise and reducing the size of the bureaucracy.
5. **Economic democracy :-** It helps to attract more resources from the private sector. It emerges economic democracy by private participation in economics sphere.
6. **Better Industrial Relations:-** Privatization may increase the number of workers and the common non who are shareholders. This could make the enterprise subject to more public vigilance.
7. **Reduction in Political Interferences:-** The process of privatization reduces political interferences in the public sector enterprises by giving more representation to the private sector in the management of public enterprise.
8. **Reduction in Bureaucracy:-** Public enterprise become synonyms bureaucracy. They can be made from bureaucracy by the process of privatization.
9. **More Productivity:-** The private sector can improve productivity by maintaining efficiency in its operations.

Disadvantages of privatization:

1. **Problem of price:-** The govt. usually want to sell the least profitable enterprise, those that the private sector is not willing to buy at a price acceptable to the government.
2. **Problem of finance:-** Under the developed capital market sometimes makes it difficult for the govt. to float shares and for individual buyers to finance the large purchase.
3. **Improper Working:-** The private sector is not interested in cost reduction and quality production because they were only interested to earn profit.
4. **Independence on government:-** There has been an excessive regulation and control of the private sector by the government. This has prevented and competition from bromine a generalized phenomenon of the economy.
5. **High cost Economy:-** Another problem with the private sector is that its cost, In general, are large and the price of products are unduly high.
6. **Concentration of economic power:-** The private sector emerges Monopoly and the concentration of economic power in the hands of few. The private sector operates on the principle of maximization of the monopoly profit. It is harmful to consumers and society as a whole.
7. **Bad Industrial Relations:-** An unfortunate aspects of the private sector is the recurrence of industrial disputes which hamper the smooth progress of the Industries.
8. **Widespread Sickness:-** The private sector industries such as textiles engendering, chemicals, iron and steel and people are suffering from the problem of industrial sickness.

9. **No Guarantee of Success:-** Privatization is not a guarantee of success of an individual unit. It has been observed that many private sector units make huge losses.

Effects of Privatization:

When privatization become started in India it affected various sectors some sectors if effected positive but in some sectors it effected various sectors some sectors it effected negative. There were some sectors which are effected and these are:-

- ❖ Impact on Indian Economy.
- ❖ Impact on Employment.
- ❖ Impact on firms or Industries.
- ❖ Impact an Banking sectors.
- ❖ Impact on Insurance Sectors.
- ❖ Impact on Education Sectors.

In these sectors the privatization becomes effected and these sectors have some positive and some negative effects. These are in a blanked form in our economy.

Impact of Privatization on Banking Sector :

- ❖ SBI enjoys a monopoly of the government business.
- ❖ The govt. hold around 93% of the equity, leaving 7% to private ownership.
- ❖ This act was outdated and needed to be re-addressed.

Why..... Need of Privatization ??

In early 80s, the banking sector in India was dominated by the public sector bank which were characterized by:

1. High-Intermediation cost.
2. Over-Staffing and over branching
3. Huge portfolio of Non-performing loans
4. Poor customer services
5. Under capitalized
6. Poorly Managed / Narrow Product range.

Positive effect of Privatization on Banking :

- ❖ Increased efficiency
- ❖ Improved services
- ❖ Enhanced schemes and interest rotes
- ❖ Better customer support.
- ❖ Misguidance to loan profit.

Negative effects of Privatization on Banking:

- ❖ Misuse of loans
- ❖ Unhealthy competition
- ❖ Neglecting small industries
- ❖ Neglecting agriculture sectors
- ❖ Laek of co-operation
- ❖ Protection of Black-money
- ❖ Favoritism
- ❖ Profit Motive

Impact of Privatization on Education :

In education sector the privatization affect both positive and negative and these are:

Advantages of Privatization on Education :

- ❖ Decentralization of educational institutes.
- ❖ Innovativeness in teaching and evaluation.
- ❖ Quality education and training.

- ❖ Shaping the curriculum according to global, national and local needs.
- ❖ Availability of better resources.
- ❖ Utility of human and physical resources in proper way.

Disadvantages of Privatization on Education:

- ❖ It will be badly affect the poor.
- ❖ Undermine equality, diversity and openness.
- ❖ Collected funds may be misused by the owners.
- ❖ Benefits remain unproven.
- ❖ Apprehension about job security and retrenchment of staff.

Impact of Privatization on Insurance Sector:

- ❖ Government States in the insurance companies to be brought down to be 5%
- ❖ Private companies with a minimum paid up capital of 1 billion.
- ❖ 26% requite capital.

List of Top Players of Insurance Sector:

- ❖ Life Insurance Corporation
- ❖ New York life
- ❖ Prudential
- ❖ Met life
- ❖ Birla Insurance
- ❖ Kotak Mahindra
- ❖ ICICI
- ❖ HDFC

Benefits of Privatization in India on Insurance Sector:

- ❖ Fast Growth
- ❖ Rise of premium income by 16%
- ❖ Tie ups with banks.

Conclusion:

Economic liberalization has increased the responsibility and role of the private sector. At the same time, it has reduced the control of the government on economy affairs. It is expected that the reforms would liberalize the Indian economy enough to create a conducive environment for rapid economic development.

MAHMUL/03651/2012
ISSN-2319 9318

Vidyawarta®

Peer Reviewed International Multilingual Research Journal
Issue-47, Vol-09, July to Sept. 2023

MAH/MUL/ 03051/2012 ISSN :2319 9318

आंतरविद्याशाखीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

विद्यावार्ता™

July To Sept. 2023
Issue 47, Vol-09

Date of Publication
01 Sept. 2023

Editor
Dr. Bapu g. Gholap
(M.A.Mar.& Pol.Sci.,B.Ed.Ph.D.NET.)

विद्येविना मति गेली, मतीविना नीति गेली
नीतिविना गति गेली, गतिविना वित्त गेले
वित्तविना शूद्र खचले, इतके अनर्थ एका अविद्येने केले

-महात्मा ज्योतीराव फुले

❖ विद्यावार्ता या आंतरविद्याशाखीय बहूभाषिक त्रैमासिकात व्यक्त झालेल्या मतांशी मालक, प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सहमत असतीलच असे नाही. न्यायक्षेत्र:बीड

"Printed by: Harshwardhan Publication Pvt.Ltd. Published by Ghodke Archana Rajendra & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor Dr. Gholap Bapu Ganpat.

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.
At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed
Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295
harshwardhanpubli@gmail.com; vidyawarta@gmail.com
All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors / www.vidyawarta.com

tre.

8. IERTs remuneration should be enhance so that they can work with commitment.

9. The SSA of Andhra Pradesh is not focusing on the NGOs cooperation in this direction of CWSN field. The IERTs are also not seeking help of NGOs and Volunteers in the local area. Hence the government has to take it seriously and seek the cooperation of NGOs.

REFERENCES

[1]. Garett, H.E. and woodworth, R.S.(1966). Satistics in psychology and education, David Mckay, company, INC, New York.

[2]. S. K Mangal (1988) psychological foundations of education, Prakesh Bros educational publishers, Ludhiana.

[3]. Dr. Alla Appa Rao, (1990). Learning disabilities, Neelkamal publications PVT. LTD. Educational Publishers New Delhi.

[4]. Dr. Uma devi, M.R (1995) Special education, a practical approach to educating children with special needs. Neelkamal publications PVT. LTD. Educational Publishers New Delhi.

[5]. www.slideshare.net/anjelataneja/home-based-education

[6]. ssa.nic.in/...education/...education/OVERVIEW%20OF%20INCLUSIVE%20EDUCA

[7]. epathshala.nic.in/wp-content/doc/NCF/Pdf/special_ed_final1.pdf

[8]. www.ssa.tn.nic.in/IE%20WRITEUP.pdf

[9]. ssakarnataka.gov.in/pdfs/Int_Inclusiveedu/CWSNDraftPolicy2013.pdf

[10]. mpsc.mp.nic.in/gacdn/SJ/PDFFiles/inculsivessa.pdf.

□□□

08

ANALYSIS OF SATISFACTION THE VARIOUS EMPLOYEE WELFARE SCHEMES AT NORTH EASTERN RAILWAYS

Dr. Subhash Kumar Gupta
Assistant Professor, Faculty Of Commerce, Digvijai Nath PG College, Gorakhpur, UP

Dr.Sanjeew Kumar Singh
Assistant Professor, Faculty Of Commerce, Digvijai Nath PG College, Gorakhpur, UP

ABSTRACT: The concept of employee welfare is dynamic. The employee welfare facility of an organization has an impact on employee behaviour and the output of the firm. Employee welfare has been interpreted in different ways from country to country and from time to time and even in the same country, according to social institutions, degree of industrialization and general level of social and economic development. Employee welfare is a comprehensive term including various services, benefits and facilities offered to employees by the employer. Employees' welfare has acquired an important place in the modern commercial word. The main aim of the employee's welfare is to establish and maintain relationship at all levels of management by giving satisfactory conditions of employments, and also provide fairly for their requirement. The modern industrial welfare covers the entire gamut of activities undertaken to secure to the industrial worker an essentially human status, to make him a better citizen and to improve his efficiency and economic position. The Railways have done a lot in respect of providing welfare facilities to their staff.

Key words: Labour Welfare Fund, welfare Scheme, Satisfaction, Employees welfare, NER.

INTRODUCTION: Employee's welfare refers to the efforts made to provide good life worth for employees, Employee or Labour welfare relates to taking care of the well-being of employees by employers. The various welfare measures provided by the employer will have immediate impact on the health, physical and mental efficiency alertness, morale and overall efficiency of the worker and thereby contributing to the higher productivity. As North Eastern Railways is stressing towards improvements in quality and productivity, the Personnel Department of North Eastern Railways aims to play a critical role in building North Eastern Railway as an efficient, responsive organization by recruiting ideal people, training them to face the challenges of the future, and serving the employees with dedication and commitment. In consonance with the ideals of a welfare state, the North Eastern Railways have been pursuing a policy of progressively improving the working and living condition of their workers. Organizations provide welfare facilities to their employees to keep their motivation levels high.

LITERATURE REVIEW: The literature related to the provision of welfare schemes that influence the employee's satisfaction and efficiency are discussed in this paper.

Kumar and Yadav (2002) titled Satisfaction Level from Labour Welfare Schemes in Sugar Factories in Gorakhpur Division, examined the labour welfare schemes in the eight State government and private sector sugar factories of the Gorakhpur Division in Uttar Pradesh. Based on stratified random sampling, 150 workers were interviewed from these sugar factories, using a well-structured interview schedule.

Ankur Sharma (2009) "Employee welfare measures taken in the Indian South Central Railway", The Study on "Employee Welfare Measures" is conducted with the main objective of evaluating the effectiveness of welfare measures at South Central Railway and to suggest measures to make existing welfare measures much more effective and comprehensive so that the benefits of the employees will be increased.

Manzini and Gwandure (2011) studied that the concept of employee welfare has been used by many organizations as a strategy of improving productivity of employees; especially in the mobile industry since work related problems can lead to poor quality of life for employees and a decline in performance. It is argued that, welfare services can be used to secure the labour force by providing proper human conditions of work and living through minimizing the hazardous effect on the life of the workers and their family member.

Lalitha and Priyanka (2014) ideated that the welfare measures need not be in monetary terms only but in any kind/forms. Employee welfare includes monitoring of working conditions, creation of industrial harmony through infrastructure for healthiness, developed relations and insurance against illness, accident and joblessness for the workers and their families.

Patro (2015) in a comparative analysis of welfare measures in public and private sector found that an employee's welfare facility is the key dimension to smooth employer-employee association. These welfare facilities improve the employee's morale and loyalty towards the management thereby increasing their pleasure, fulfilment and performance.

OBJECTIVE OF STUDY: The main objectives of the study are listed below:-

1. To find the various employee welfare schemes in North Eastern Railway (NER).
2. To find review of literature in welfare scheme.
3. To analyses and evaluation of satisfaction of employee welfare scheme in North Eastern Railway (NER).

HYPOTHESIS OF THE STUDY: The hypothesis of the study employee welfare scheme:-

Null Hypothesis (H):-The means for all groups are the same (equal).

H:- "Employees' welfare measures in North Eastern Railway (NER) are not effective".
(There is no significant difference between the sample mean (x) populations mean (μ). and
Alternative Hypothesis (H):- The means are different for at Least one pair of groups.
H: - "Employees' welfare measures in North Eastern Railway (NER) are effective".

RESEARCH METHODOLOGY: Research methodology is the specific procedures or techniques used to identify select, process and analyse information about a topic. In a research paper the methodology section allows the reader to critically evaluate a study's overall validity and reliability .Research methodology refers to the procedure obtaining knowledge on Questionnaire Methods to collect the data by using stratified sampling method.

PRIMARY SOURCES: Primary data is the first hand data collected to original nature. The primary data has been collected by means of questionnaires and interview method of the employees of North Eastern Railways.

SECONDARY SOURCES: A data which is not collected original nature. It is not freshly collected by the researcher but was existing already and was rather collected from published and unpublished source is known as secondary data. The secondary data have been collected from various public sources such as Books, Journal, Annual Reports and Accounts of North Eastern Railways, Magazines, Newspapers, and various Websites, etc.

SAMPLE DESIGN AND SAMPLE SIZE: In this study researcher determine the sample size of 150 employees is chosen from various levels by following the technique of simple random sampling. The primary data was collected by using questionnaires.

STATISTICAL TOOLS APPLIED: For the analysis and interpretation of data wherever necessary the simple and primary statistical measures and techniques such as calculation of Simple Average Mean, Percentage, Standard Deviation, Variance, Standard Error, and Z-test has been applied.

CONCEPTUAL FRAMEWORK OF LABOUR WELFARE SCHEME: Labour welfare is a comprehensive term, which may include any activity, which is connected with the social, moral and economic betterment of workers provided by any agency. Labour Welfare Fund is a fund contributed by Employer, Employee and in some states by the Government as well. The purpose of these welfare funds is to provide housing, medical care, educational, and recreational facilities to the workers and their dependents. Welfare includes provision of various facilities and amenities in and around the work-place for the better life of the employees. North Eastern Railways are the biggest enterprise in the country. They consider that contented staffs are the assets in Industries. With a view to keep the staff contented as regards their entitlements, they have taken programmed methods to meet the grievances of the staff. Moreover, it also provides different welfare measures for the benefit of the staff, which are as follows:-

A. Provision of Institutes & clubs;
B. Provision of schooling facilities.
C. Facilities for sporting activities;
D. Cultural associations;
E. Educational assistance, reimbursement of tuition fees & hostel subsidy
F. Provision of holiday homes; G. Provision of scouts & guides
H. Provision of canteens;
I. Handicraft centre
J. Vocational training centres
K. Provision of co-operative societies Medical facilities; M. Staff benefit fund.

ANALYSIS AND INTERPRETATION:

Analysis and Interpretation refers to a systematic and critical examination of the financial statements. It not only establishes cause and effect relationship among the various items of the financial statements but also presents the financial data in a proper manner.

Analysis of the welfare schemes of the workers- Questionnaire, interview and observation techniques have been used to study the job satisfaction of the workers relative to the welfare schemes. This questionnaire was self-made and then it was administered to 150 employees. After enumeration, the data were classified for statistical analysis, in which the mean standard deviation and variance were calculated, along with this Z test was calculated to test the significance of the means. In the light of the above, the present chapter analysed the effectiveness of personnel welfare measures of North Eastern Railway, which have been presented through the following tables and their overall analysis has been presented: -

Section -A

CHARACTERISTICS OF RESPONDENTS:

1. Age:

Description of the age of employees in the research studies of various thinkers, age in such a factor which affects the person directly or indirectly. It is an important subject which gives a definite direction to the individual behavior and motivation of human beings the person who the higher the age, the more his experience will be in the same proportion.

Table No. 1

Classification based on the age of the respondents

Age	No.of the respondents	Percentage
Below 35 years	26	17
36-45	31	21
Above46 years	93	62
Total	150	100

Inference:

From the analysis of the above table , it is inferred that among the employees of North Eastern Railways, 17% of the respondents come under the category of below 35years, 21% of the respondents falls under 36-45years and 62% of the respondents come under the category of above 46 years. These finding are illustrated in chart-1. It is clear that most of the adults related to the subject of study are mature and experienced. To check the study, the statistical mean of employee.

2. Gender:

Description of Gender- Gender is an important factor of personality which gives a definite direction to the social and philosophical outlook and profession of every person. Gender affects the status of human beings, their emotions and behaviors.

Table-2

Classification based on the Gender of the respondents

Gender	No. of the respondents	Percentage
Male	136	91
Female	14	9
TOTAL	150	100

Inference:

From the analysis of the above table it is inferred that 91% of the respondents are males and 9% of the respondents are females among the employees of North Eastern Railway.

3. Organization:

Table-3

Classification based on the Organization of the respondents

Organization	No. of the Respondents	Percentage
Group-A	6	4
Group-B	39	26
Group-C	47	31
Group-D	58	39
TOTAL	150	100

Inference: From the Analysis of the above table it is inferred that the maximum number of Group-D category 39%, 31% of Group-C category, 26% of Group-B category and the lowest number of Group-A category are 4% among the respondents of the North Eastern Railway.

4. Experience:

Table-4

Classification based on the Experience of the Respondents

Experience	No. of the Respondents	Percentage
Below 10 years	27	18
11-20	17	11
Above21 years	106	71
TOTAL	150	100

Inference:

It is clear from the complete discussion of table number 4. From the analysis of the above table it is inferred that 18% of the respondents come under the category of below 10 years, 11% of the respondents falls under 11 to 20 years and 71% of the respondents come underthe category of above 21 years of experience in North Eastern Railway. It is clear that most of the respondents are experienced and satisfied with his work.

5. Personal Income:

Table-5

Classification based on the Personal Income of the Respondents

Personal Income	No. of the Respondents	Percentage
Less than 10,000/-	87	58%
10,000-25,000/-	52	35%
Above 25,000/-	11	7%
TOTAL	150	100

Inference:

From the above table it is inferred that 58% of the respondents come under the category of less than 10,000/- is 35% of the respondents falls under 10,000/ - 25,000/- and 7% of the respondents come under the category of above 25,000/- of personal income of North Eastern Railways employees.

6. Family Size:

The more the number of family members, the less satisfaction with the job. This means that the more money is needed to maintain the family, the less is the job satisfaction.

Table-6

Classification based on the Family Size of the Respondents

Family Members	No. of the Respondents	Percentage
Below 3	6	4%
Below 4	39	26%
Below 5	46	31%
6 or more	59	39%
TOTAL	150	100

Inference:

From the analysis of the above table that the maximum number of family members of the respondent employees of the North Eastern Railway are 6 or more family members(6 and above) is 39%, below 5 family member is 31%, below 4 family members is 26% and below 3 family member is 4% of the respondents.

Section-B

SHOWING THE RESULT OF THE STUDY.

"Employees' welfare measures in North Eastern Railways are effective".

Table No.7

FREQUENCY PERCENTAGE FOR THE SECTION FIRST (EMPLOYEES' WELFARE MEASURES IN NORTH EASTERN RAILWAY)

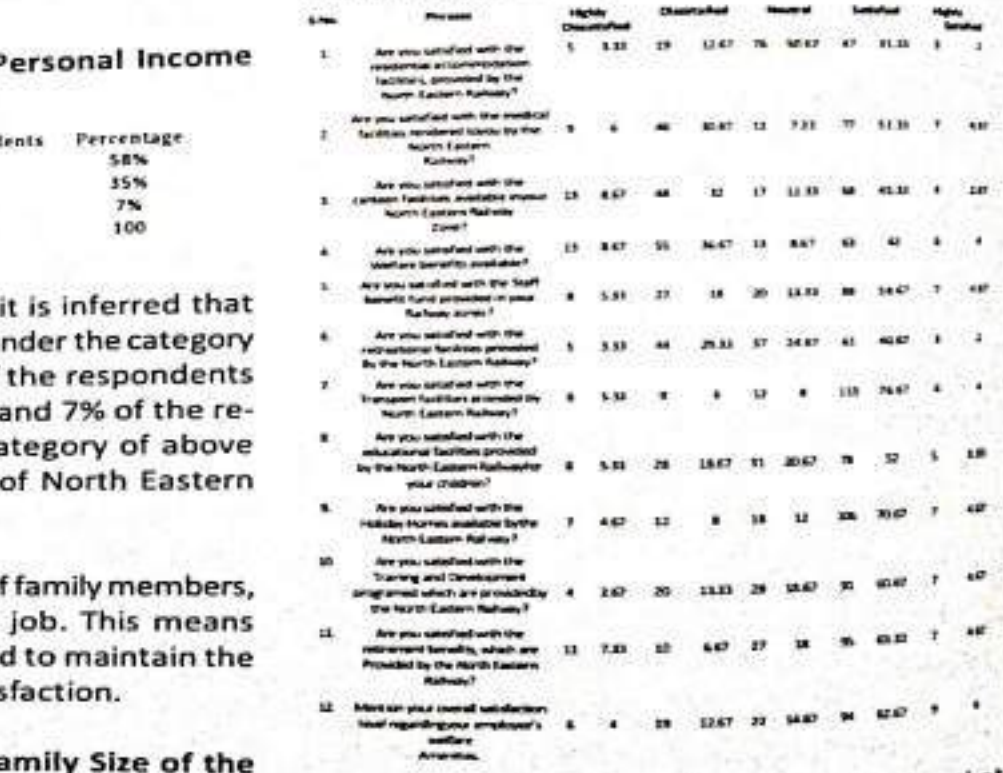

It is clear from the above graph that most of the employee's respondents of North Eastern Railway express a sense of satisfaction with the effectiveness of the welfare schemes.

TESTING OF HYPOTHESIS:

Statistical analysis for Labour welfare

schemes in North Eastern Railways. Studying the above facts reveals that most of the employees are satisfied and some employees are dissatisfied with the personnel welfare facilities of North Eastern Railway. All the questions given in the questionnaire were introduced to the respondents and the employees expressed their response to all the questions. The mean and standard deviation were taken out to represent the attitude of the questions in the questionnaire. Respondents answered affirmatively on many questions and answered negatively to some questions. All questions were selected from Railway Personnel. The mean of the scale (3) * was used for high judgment, the result being that if the response is less than this, the result will not be relevant and if the response result is more than 3, then the result will be of employees welfare. Would be worthwhile for:

*Mean of the scale = $\frac{1+2+3+4+5}{5} = \frac{15}{5} = 3$

The compilation and statistical analysis of the data obtained from the survey has been done in Table 8 below-

Table-8

Conducting tests and statistical analysis for section studies

(Section-A Employees welfare Scale in North Eastern Railways

S.No.	Questions	Mean(X)	Standard (?)	Variance (?)
1	Are you satisfied with the residential accommodation facilities provided by the North Eastern Railway?	3.30	0.79	0.62
2	Are you satisfied with the medical facilities rendered to you by the North Eastern Railway?	3.18	1.10	1.21
3	Are you satisfied with the canteen facilities available in your North Eastern Railway zone?	3.01	1.12	1.03
4	Are you satisfied with the welfare benefits available?	2.96	1.24	1.29
5	Are you satisfied with the Staff Benefit fund Provided in your Railway zone?	3.39	1.01	1.01
6	Are you satisfied with the recreational facilities Provided by the North Eastern Railway?	3.09	0.95	0.91
7	Are you satisfied with the Transport facilities Provided by North Eastern Railway?	3.68	0.86	0.74
8	Are you satisfied with the educational facilities provided by the North Eastern Railway for your Children?	3.29	0.98	0.97
9	Are you satisfied with the Holiday Homes available by the North Eastern Railway?	3.63	0.88	0.77
10	Are you satisfied with the Training and Development programmes which are provided by the North Eastern Railway?	3.51	0.88	0.77
11	Are you satisfied with the retirement benefits, which Are provided by the North Eastern Railway?	3.51	0.96	0.92
12	Mention your overall satisfaction level regarding Your employee's welfare amenities.	3.54	0.93	0.86

In Table 8, it is generally found that the mean and standard deviation of most of the questions are presenting positive attitude. If their mean is less than 3 then the response of NER staff will not be relevant but if the mean is more than 3 then the result will be appropriate.Employees Welfare Scale of North Eastern Railways - Evaluation of Table-8 shows that most of the respondents have positive attitude as their mean is higher than mean scale (3) the mean of question serial no. (07) is highest (3.68). The statement of the question was as follows "Are you satisfied with the transport facilities provided by the North Eastern Railways? The mean (0.91) of the question at serial no. (4) Was- "Are you satisfied with the welfare benefits available? So most of the respondents are not satisfied with this question.

(2) Result of the study:

HYPOTHESIS-

H : Employees welfare measures in North Eastern Railways are not effective.

H: Employees welfare measures in North Eastern Railways are effective.

In order to Test the hypothesis, one sample Z-test is applied because samples are large and its subscale has 12 items the mean score of this subscale compared to the score of the neutral value (Mean scale of 12 Questions)= (12 x 3 = 36).

Table-9

Descriptive statistics of effectiveness of employees measures for whole sample-

N	Minimum	Maximum	Mean (?)	Standard Deviation(?)
150	4	460	39.96	11.99 or 12

Table-10

Descriptive one - sample statistics for Z-test (One - sample statistics for Z-test)

	N	Mean (?)	Std. Deviation sample(?)	[illegible] Mean(?)
Effectiveness of Labour welfare schemes	150	39.96	12	0.98

Table-11

One sample statistics for Z-test

	(Population Mean) Test value = 36					
	Z	d.f.	Significance 2-tailed (5%)	of Mean test difference	95% Confidence Interval of the difference	
					Lower	Upper
Effectiveness of Labour welfare schemes	4.05	149	1.96	3.96	2.04	5.88

*(d.f. = (N-1))

*Calculation of lower class interval: = 5e5Q "
1.96 55e

= 3.96 " 1.96 × 0.98

= 3.96 " 1.92

= 2.04

*Calculation of upper class interval:

5e5Q + 1.96 55e = 3.96 + 1.96 × 0.98

= 3.96 + 1.92

= 5.88

INTERPRETATION/CONCLUSION:

For verification of above data researcher has applied Z-test at 5% significance.

Table Value: From the table calculated value of Z- test 4.05 for 149 degree of freedom at 5% level of significance for two tailed test 1.96. From the Table 11, tabulated value of Z for 150 d.f. at 5% level of significance for two-tailed test is 1.96. Since calculated value is much greater than the tabulated value it is highly significant. Hence we reject the null hypothesis and conclude that "Employees' welfare measures in NER are effective" is accepted. So, Z-Value 4.05 > 1.96 tabulated value than, H is rejected and H is accepted means North Eastern Railways provided by Labour welfare scheme are very effectiveness in reference of employees.

SUGGESTIONS: The following suggestions being preferred by the researchers based on the finding of the study are worth considering:

1. There is a need to further improve these facilities by way of having modern equipment's in the hospital and clinics and by providing quality medicine in these hospitals and clinic of North Eastern Railways.

2. The North Eastern Railways should more focus on Human resources development programmed for enhancing the competitiveness of the NER organizations in the context of internal and external changes in the environment

3. There are number of canteens which are highly subsidized. To further improve this facility it is suggested that the capacity of the existing canteen should be increased. Cooking equipment like electronic oven and gas oven should be installed; better hygienic dish washing machine, floor cleaning machine etc. should be arranged.

4. Educational facilities provided by the NER are generally confined to Primary, Middle and High and Higher Secondary Standards. The North Eastern Railways do not normally enter into the field of college and Technical education for this NER management should extend the coverage of educational facilities in light of technical education.

BIBLIOGRAPHY

1. Bowers ox, Donald J., (1996), "Logistical Management." Tata M.C. Graw , Hill, New Delhi.

2, Bhattacharyya, Narendra Nath (1995) Religious culture of North-Eastern India. New Delhi: Manohar Publishers & Distributors.

3. Hajberg, Frederick (1957) Job Attitudes" Review of Research and Opinion Psychological Services of Pittsburgh, 1957.

4. International journal of Business Management and Economics, Vol.1, No.11, 1-8 Jan-March, (2014).

5.Schemenner, R.W., Huber, J.C. and Cook, R.L. (1987), 3Geographic differences and the location of New Manufacturing facilities ", Journal of Urban Economics, Vol.21, 19-22 June.

6. https://www.academia.edu/study-of-employee-welfare-schemes

7. https://ner.indianrailways.gov.in

□□□

सम्बोध

(A JOURNAL OF DISCURSIVE SOCIAL SCIENCE)

अर्द्धवार्षिक सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष -9, अंक -17 जनवरी-जून 2023

ISSN 2394 - 7810

Peer Reviewed Journal

निर्मला देवी अध्ययन एवं शोध संस्था

गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

सम्बोध

(A JOURNAL OF DISCURSIVE SOCIAL SCIENCE)

अर्द्धवार्षिक सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

वर्ष -9, अंक -17 जनवरी-जून 2023

ISSN 2394 - 7810

Peer Reviewed Journal

निर्मला देवी अध्ययन एवं शोध संस्था

गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

सम्बोध

अर्द्धवार्षिक सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

(A Journal of Discursive Social Science)

अतिथि सम्पादक

डॉ. मिथलेश कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर

स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग

राँची विश्वविद्यालय, राँची

प्रधान सम्पादक

डॉ. लक्ष्मण गुप्त

7. वैश्विक परिदृश्य में आर्थिक विकास और मानव
– डॉ. संजीव कुमार सिंह 70 - 75

8. लोकनाट्य साहित्य की परंपरा व विकास एवं
उसके विविध रूप – डॉ. धनंजय कुमार 76 - 98

9. स्वतंत्रता के बाद भारत की प्रथम शिक्षा नीति
(सन् 1968 के संदर्भ में) – कु. प्रिया वर्मा 99 - 108

10. बदलती जीवन शैली में परंपरागत आहार
एवं पोषण का महत्व –महिमा पाण्डेय 109 - 116

11. Yoga : A Complete Life Style
- Dr. Harendra Singh 117 - 123

12. Overview of Financial Literacy in Women
Empowerment - Dr. Subhash Kumar Gupta 124 - 136

7

वैश्विक परिदृश्य में आर्थिक विकास और मानव

डॉ संजीव कुमार सिंह *

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य तीव्रगति से रंग दल रहा है, संचार क्रान्ति ने विभिन्न देशों के बीच की दूरी पाट दी हैं उनके बीच आपसी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व भावनात्मक सम्बन्ध सुदृढ़ रूप से स्थापित हुए हैं। आर्थिक, सामाजिक व भावनात्मक सम्बन्ध सुदृढ़ रूप से स्थापित हुए हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में समूचा विश्व एक इकाई बन गया है 'ग्लोबल विलेन' शब्द का प्रयोग गोर्बाचोव ने 1985 में किया गया था और यह प्रयोग आपत्तिजनिक नहीं है क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास से आज विश्व के विभिन्न भाग व्यवहारिक रूप से एक दूसरे के इतने अधिक निकट आ गये हैं कि तकनीकी दृष्टि से विश्व को यह संज्ञा दी जाती है।

यह वैश्वीकरण की ही देन है कि देशों के मध्य परस्पर शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी निर्यात की संभावनायें बढ़ी हैं। दुनिया को नये

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, दिग्विजयनाथ पी. जी. कॉलेज, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

आर्थिक संयंत्र प्राप्त हुए हैं, जिससे सेवा क्षेत्र का दायरा बढ़ा है, वैश्वीकरण से आर्थिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ है। पिछले एक दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था का जिस तीव्रगति से विकास हुआ है वह इस वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जुड़ने का ही परिणाम है।

हम 191 के अभूतपूर्व आर्थिक संकट को विस्मृत नहीं कर सकते हैं, जब वैश्विक राजनीति और सामरिक कारणों से देश में विदेशी मुद्रा भण्डार घटकर 1.1 बिलियन डालर ही रह गया था, भुगतान सन्तुलन की अत्यन्त विशम परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी। अतः भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था मुक्त रूप से जुड़ना पड़ा था। परन्तु इसके परिणाम काफी सुखद रहे, आज भारत का औद्योगिक सूचकांक का अध्ययन करने पर इसमें निरन्तर वृद्धि होती दिखाई देती है।

तालिका – 1

Revised MSME Classification (1 जुलाई, 2020 से प्रभावी)

[illegible]

मानदंड	सूक्ष्म	लघु	मध्यम
[illegible]	[illegible] निवेश और रु0 5 करोड़ से कम	[illegible] से अधिक और रु0 10 करोड़ से कम तथा कुल बिक्री रु0 5 करोड़ अधिक और रु0 50 करोड़ से कम	[illegible] करोड़ से अधिक और रु0 20 करोड़ से कम तथा कुल बिक्री रु0 50 करोड़ से अधिक तथा रु0 100 करोड़ से कम

2021–22 (अप्रैल–दिसम्बर) गोरखपुर सेक्टर ने 12.6 % की वृद्धि, देश के कोर सेक्टर ने 2021 – 22 (अप्रैल–दिसम्बर) में पिछले वर्ष की इसी अवधि की तुलना में 12.6 % की वृद्धि दर्ज की है, जबकि 2020–21 (अप्रैल दिसम्बर) में (–) 9.8 की ऋणात्मक वृद्धि दर्ज की थी, 2021–22 (अप्रैल–दिसम्बर) में सर्वाधिक अच्छा निष्पादन सीमेन्ट उत्पादन में हुआ है, (26.1%) इसके बाद प्राकृतिक गैस (22.4 %) इस्पात (22.1%) का स्थान है, रासायनिक उर्वरक के उत्पादन में 0.1% की गिरावट आयी है।

तालिका – 2

आठ कोर उद्योगों में वर्षानुवर्ष वृद्धि दर (प्रतिशत में)

क्षेत्र	भार	2016–17	2017–18	2018–19	2019–20	2020–21	2021–22 (अप्रैल दिस.)
कोयला	10.335	3.2	26	7.4	– 0.4	– 1.9	10.6
कच्चा तेल	8.9833	– 2.5	– 0.9	– 4.1	– 5.9	– 5.2	– 2.6
प्राकृतिक गैस	6.8768	1–	2.9	08	– 5.6	– 8.2	22.4
रिफायनरी उत्पाद	28.0376	4.9	4.6	3.1	02	– 11.2	10.0
रासायनिक उर्वरक	2.6276	02	0.03	03	2.7	1.7	– 0.1
इस्पात	17.9166	10.7	5.6	5.1	3.4	– 8.7	22.1
सीमेन्ट	5.372	– 1.2	6.3	13.3	– 0.9	– 10.8	26.1
बिजली	19.853	5.8	5.3	5.2	09	– 0.5	9.4
कुल वृद्धि	100	4.8	4.3	4.4	0.4	– 8.7	12.6

आज देश में विदेशी मुद्रा कोष लगभग 521.99 अरब डालर के रिकार्ड स्तर पर है। इसमें विदेशी परिसम्पत्तियाँ 645 अरब डालर की है। विदेशी मुद्रा की पर्याप्तता के कारण ही भारत सरकार ने उच्च ब्याज दर वाली एशियाई विकास बैंक के ऋणों के कुछ भाग का समय पूर्व भुगतान किया है परन्तु वैश्वीकरण के सुनहरे आवरण में पूँजी की जो बेरोक–टोक आवाजाही शुरू हुई है। उसके कारण पिछड़े देशों में विषमता, गरीबी और बेकारी बढ़ रही है। जैसे–जैसे विश्व–अर्थव्यवस्था मंदी के दलदल में धंसती जा रही है, वैसे–वैसे विकसित देशों तथा खासकर अमेरिका की तरफ से शोर होता जा रहा है कि 'मुक्त व्यापार' के दायरे को और बढ़ाया जाये। अमेरिकी प्रशासन ने यह भी संकेत दिया है विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) के एक नये चक्र के अन्तर्गत तीसरी दुनिया के देशों की ओर से 'मुक्त–व्यापार' की कोई भी विरोध 'सभ्यता के लिए आतंकवादियों के खतरे' के समकक्ष समझा जाना चाहिए और उसी हिसाब से निबटा जाना चाहिए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैश्वीकरण एक नये प्रकार का साम्राज्यवाद है। दुनिया के विभिन्न गरीब देशों के बाजारों को बल पूर्वक खुलवाना तथा आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करना प्रमुख उद्देश्य है।

अर्थशास्त्रियों ने वैश्वीकरण के चार अंग बताये हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. निर्बाध व्यापार प्रवाह
2. निर्बाध पूँजी प्रवाह
3. निर्बाध तकनीकी प्रवाह
4. विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह।

इस विकास के चरण में विकसित देशों के समर्थक वैश्वीकरण की परिभाषा पहले तीन अंगों तक सीमित कर देते हैं प्रायः श्रम प्रवाहों की पूर्णतया उपेक्षा कई है। जिससे अल्प विकसित देशों में बेरोजगारी काफी हद तक बढ़ गई है।

विश्व के विकासशील देशों के समूह जी 77 के दो देश मैक्सिको तथा दक्षिण कोरिया इस बात का उदाहरण है कि उन्होंने भी भारी मात्रा में विदेशी पूँजी निवेश की इस नीति को अपनाया था, परन्तु जब डॉलर के सापेक्ष मैक्सिको की मुद्रा पीसो तथा दक्षिण कोरिया की मुद्रा वॉन का विनिमय मूल्य 40 % से 60 % तक गिर गया तथा देश की अर्थव्यवस्था बिगड़ गई। जिसके दुष्परिणाम वहाँ के नागरिकों को भी झेलने पड़े।

यह समस्या सिर्फ किसी एक देश की नहीं है तथा इसके दुष्परिणाम देश को ही नहीं वरन् नागरिकों को भी झेलने पड़ते हैं। मनुष्य की मानवीयता का अन्त होता जा रहा है। इधर में इण्टरनेट पर बढ़ती आत्महत्या तथा भारत में किसानों की मौत ने वैश्वीकरण की समस्या को मानवीय पक्ष के रूप में उभारा है। वास्तव में इस विकास का मानव विशेष पर क्या प्रभाव पड़ा है इस पर विचार करने की आवश्यकता है लगभग आयी आबादी को रोजाना दो डॉलर से भी कम में गुजारा करना पड़ रहा है। देश में पूँजी निवेश हो रहा है तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं हो रही है। कई देशों के नागरिकों को रोजाना एक डॉलर भी नहीं प्राप्त हो रहा है। इससे आम नागरिकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वैश्वीकरण तथा संचालर की विकसित प्रणाली से एक मनुष्य को यदि दूसरे देश में अथवा अपने देश में रहने वाले अन्य किसी नागरिक अथवा रिश्तेदार से बात करने या मुलाकात करने के लिये अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षा का वैश्वीकरण होने के बावजूद आज अनेक होनहार छात्र सही शिक्षा नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं।

नवीन उद्योगों की स्थापना के बावजूद बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है तथा इस समस्या ने अन्य नई समस्याओं को जन्म दिया है जैसे कि आतंकवाद, हिंसा, कालाबाजारी, देह–व्यवहार, शरीर के अंगों की अवैध बिक्री, भ्रष्टाचार इत्यादि। इस बेरोजगारी तथा अशिक्षा ने, आर्थिक तंगी ने लोगों को आत्महत्या तक करने पर दबाव डाला है।

अर्थशास्त्रियों ने वैश्वीकरण तथा उदारीकरण से अर्थव्यवस्था का

चेहरा 'मानवीय' बनाने की घोषणा तो की थी, लेकिन हुआ क्या ? महंगाई बढ़ी, छोटी बचतों पर ब्याज दर घटी, जरूरी चीजें आम आदमी नहीं प्राप्त कर सके। समाज कल्याण सिर्फ नाम भर का रह गया। शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, बिजली, पेयजल इत्यादि दुनियादी जरूरतें पूरी नहीं हो रही है।

वैश्वीकरण के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था दो भागों में बँट गई। उच्च मध्यम वर्ग के लोग मंहगे होटल, मोबाइल फोन, फैशन परस्त दुनिया में व्यस्त हैं तो बाकी मध्यम वर्ग ऐसी जीवन–शैली जीने में जो कि तनावग्रस्त हैं। महाराष्ट्र, उड़ीसा, बिहार आदि राज्यों में लोग भुखमरी के शिकार हैं। उत्तर प्रदेश के कर्ज में डूबे लोगों ने आत्महत्यायें की हैं। करोड़ों की तादाद में शिक्षित बेरोजगार हैं अर्थात जनता अनेक तरह की आर्थिक, सामाजिक समस्या से जूझ रही है। यह कैसे कहा जा सकता हैं कि – हमारा राष्ट्र विकास कर रहा है ?

वास्तव में वैश्वीकरण समृद्ध देशों के पक्ष में यह बात भी उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि यहाँ वैज्ञानिक प्रगति तथा आर्थिक स्वावलम्बन ने व्यक्ति की एक दूसरे पर निर्भरता को कम किया परन्तु उसके भी उचित परिणाम हमें देखने को नहीं मिलते हैं। वैश्वीकरण के युग में प्रवेश कर रहे हैं, जिसमें कुछ खतरे हैं तो कुछ अच्छाइयाँ भी हैं, अवसर भी हैं। यद्यपि मानवीय परिवेश में कुछ लोगों ने सवाल उठाया है कि यह उदारीकरण उचित है या नहीं, परन्तु यह भी सत्य है कि सवाल आर्थिक सुधारों को खारिज करने का नहीं वरन् इसे किस ढंग से लागू किया जाना चाहिए इस पर विचार करना चाहिए।

उदारीकरण की प्रक्रिया एक सुनिश्चित तरीके से अपनाने पर लाभ मिलता है, यदि पहले शिक्षा, स्वास्थ्य व मानव संसाधनों को विकसित किया जाये तब यह मानवीय रूप में लाभप्रद होगा तथा उनके अनुसार बुनियादी आवश्यकताओं को पूर्ण करके किया गया उदारीकरण आर्थिक विकास में सहायक है।

स्रोत – दैनिक जागरण, प्रतियोगिता दर्पण/भारतीय अर्थव्यवस्था।

3.38 MB

ISSN 2348-3857

Research Reinforcement

(A Peer Reviewed International Refereed Journal)

रिसर्च रिइन्फोर्समेंट

Volume 11 Issue 2 November 2023 - April 2024

9:28

Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 11, Issue 2 | November 2023 - April 2024 | pp. 19-23

पं. दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचार

डॉ. सुभाष चन्द्र
सहायक आचार्य, बी.एड. विभाग, दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)
श्री राकेश कुमार सिंह
सहायक आचार्य, बी.एड. विभाग, दिग्विजयनाथ पी.जी. कॉलेज, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश
पं. दीनदयाल उपाध्याय बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विचार वर्तमान समय में भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने कि आजादी के समय थे। उनके अनुसार राष्ट्र एवं समाज की उन्नति के मूल में शिक्षा व्यवस्था है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में व्याप्त समस्याओं के निवारण में [illegible] सहायक है। [illegible] के अनुसार शिक्षा प्रक्रिया त्रिमुखी होती है। शिक्षा प्रक्रिया में विद्यार्थी, शिक्षक तथा पाठ्यचर्या एवं अनुशासन तीनों का अत्यन्त महत्व है। उपाध्याय आदर्शवादी शिक्षा के हिमायती थे। पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है विद्यार्थी में सामाजिक चेतना का भाव जाग्रत करना। उन्होंने शिक्षा एवं संस्कार के द्वारा विद्यार्थी में समाज के मूल्यों को विकसित करने पर बल दिया। वर्तमान समय में समाज में व्यक्ति के चरित्र एवं संस्कारों का ह्रास होता जा रहा है। आधुनिक समय में शिक्षाविदों ने चरित्र के विकास पर बल देने की आवश्यकता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का शिक्षा में प्रयोग करके विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करने के साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व में नैतिक गुणों का विकास कर सकते हैं। वर्तमान समय में पं. दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचार प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा में आज भी प्रासंगिक हैं।

संकेताक्षर—छात्र संकल्पना, एकात्म मानववाद, लोक शिक्षा, चरित्र निर्माण

प्रस्तावना

पं. दीनदयाल उपाध्याय का उत्थान 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। इस काल खण्ड में पश्चिम का ज्ञान-विज्ञान पश्चिम के साम्राज्यवाद के माध्यम से [illegible] एवं अंग्रेजी [illegible] में पहुँचा। पश्चिम के विचार से भारतीय राष्ट्रवादी समाज पश्चिमी साम्राज्य के साथ-साथ पश्चिमी ज्ञान की प्रभुता को स्वीकारना अपने स्वाभिमान पर चोट मानते थे। राष्ट्रवादी समाज ने पश्चिम के ज्ञान को नकारा। दीनदयाल उपाध्याय इसी भारतीय राष्ट्रवाद के प्रबल [illegible] थे, इसी कारण से उपाध्याय की शैक्षिक संकल्पना राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत थी। वे भावी पीढ़ियों को राष्ट्रवादी शिक्षा प्रदान करने के हिमायती थे।

पं. दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था समाज द्वारा की जानी चाहिए। [illegible] का यह मानना था कि यदि धन के अभाव में छात्र को शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाई तो हमारा समाज पशु समाज बन जाएगा। वर्तमान समय में यह आशंका किसी हद तक सही भी साबित हो रही है। आज समाज ने अंग्रेजी भाषा व [illegible] को अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को उच्च बनाये रखने हेतु [illegible] स्वीकार कर लिया है। जबकि उपाध्याय अपनी संस्कृति एवं भाषा को ही सर्वोपरि मानते थे। उनके अनुसार "अपनी राष्ट्रीय भाषा की उपेक्षा करना भारत की समस्याओं का मूल कारण है।" उपाध्याय [illegible] न होकर [illegible] थे। वे भारत को किसी और की प्रति छाया नहीं बनाना चाहते थे। बल्कि वे भारत को युगानुकूल बनाने के पक्षधर थे। उनकी विशुद्ध भारतीयता एवं मानवीय चेतना 'एकात्म मानववाद' में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

उपाध्याय के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया में ज्ञान व चिन्तन की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे शिक्षण पद्धति में स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान को ही स्थायी मानते थे। उनके अनुसार, "स्वाध्याय के लिए आवश्यक है कि उनके पास ज्ञान प्राप्ति के लिए पुस्तकें आदि हों।" उपाध्याय ने शिक्षा की प्रक्रिया को त्रिमुखी माना है, जिसके तीन मूल अंग होते हैं—विद्यार्थी, शिक्षक तथा पाठ्यचर्या एवं अनुशासन। ये तीनों अंग आपस में अंतर्संबंधित होते हैं।

छात्र की संकल्पना—उपाध्यायजी आदर्शवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। उनके शैक्षिक विचारों पर वैदिक परम्परा का अत्यधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनके अनुसार विद्यार्थी को गुरु के प्रति पूर्णतः समर्पित होना चाहिए। विद्यार्थी को "काक चेष्टा बको ध्यानं श्वान निद्रा तथैव च, अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्" से विभूषित होना चाहिए। विद्यार्थी के अन्दर अपने राष्ट्र व संस्कृति के प्रति अपार सम्मान व प्रेम होना चाहिए। उपाध्यायजी वैदिककालीन गुरुकुल परम्परा को [illegible] के विद्यार्थियों को देखना चाहते थे, किन्तु उनके [illegible] में उनके विचारों में कहीं भी रूढ़िवादिता नजर नहीं आती। वे [illegible]

से लेकर [illegible] तक के विभिन्न [illegible] से प्रतिभाशाली बैठते थे [illegible] जो अनुत्तीर्ण हो जाते थे वही अध्यापक बनने की बात सोचते थे। जिस अध्यापक को प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में 'आचार्य देवो भव' कहा गया उसके आचरण का यह अवमूल्यन बहुत ही चिंताजनक है। यदि समाज को सही अर्थों में सुशिक्षित करना है तो अध्यापक की गरिमा को पुनःस्थापित करना होगा।"

उपाध्यायजी के अनुसार वर्तमान में हमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को बचाने हेतु कुशल शिक्षकों की आवश्यकता है, जो न केवल शिक्षक-प्रशिक्षण की अर्हताओं को पूरा करता हो बल्कि मन, वचन एवं कर्म से भी शिक्षक हो। जिनमें केवल धन कमाने की लालसा न हो अपितु शिक्षण व समाज के प्रति समर्पण भाव भी हो। उपाध्याय का मानना था कि, शिक्षा के व्यापक एवं दूरगामी अर्थों को समझने वाला व्यक्ति ही शिक्षक बने। शिक्षक को उन्होंने शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग बताया। शिक्षक के बिना समस्त शैक्षिक एवं भौतिक संसाधन निरर्थक होते हैं। शिक्षक को योग्य एवं कर्तव्यपरायण होना चाहिए जो भौतिक संसाधनों के अभाव में भी छात्रों को उत्तम शिक्षा प्रदान कर सके। अध्यापक-शिष्य का पिता-पुत्र जैसा संबंध [illegible]

ResearchGate

See discussions, stats, and author profiles for this publication at: https://www.researchgate.net/publication/384361455

"A Comparative Study of Psychosocial Stress, Health and Satisfaction with Life among Professional and Non-Professional Women"

Article *in* Journal for ReAttach Therapy and Developmental Diversities · September 2023

DOI: 10.53555/jrtdd.v6i7s.3163

CITATIONS
0

READS
43

3 authors, including:

Vivek Kumar Shahi
DNPG COLLEGE GORAKHPUR
8 PUBLICATIONS **9** CITATIONS
SEE PROFILE

Zeba Aqil
Integral University
34 PUBLICATIONS **32** CITATIONS
SEE PROFILE

All content following this page was uploaded by Vivek Kumar Shahi on 27 September 2024.

The user has requested enhancement of the downloaded file.

Journal for ReAttach Therapy and Developmental Diversities
eISSN: 2589-7799
2023 September; 6 (7s): 1197 - 1205

"A Comparative Study Of Psychosocial Stress, Health And Satisfaction With Life Among Professional And Non-Professional Women"

Dr. Shoaib Hasan[1]*, Dr. Vivek Kumar Shahi[2], Dr. Zeba Aqil[3]

[1]*Assistant Professor, Psychology, Department of Humanities and Social sciences, Integral University, Lucknow.
[2]Assistant Professor, Psychology, Digvijai Nath Post Graduate College, Gorakhpur.
[3]Professor & Head, Department of Humanities and Social sciences, Integral University, Lucknow.

Abstract

In today's globalized society, women must fulfill the dual roles of career builders and housewives. Consequently, given the current circumstances, research on psychosocial stress, health, and life satisfaction among employed and housewife women are desperately needed. Therefore, this study aimed to examine the pattern of psychosocial stress that affects the health among employed or housewives. The study also aimed to compare the life satisfaction level of employed and housewives. In the present research, sample was drawn from the population of Gorakhpur city government service employed and housewives (i.e., graduate employees and graduate housewives respectively) from urban areas by using purposive sampling technique. The total participant's size taken for the study was eighty (80) out of which 40 participants constituted of employed and 40 constituted of housewives. The self-administered questionnaire included questions related to socio demographics and three validated scales**;** the Psychosocial Stress Questionnaire was developed by A.K. Srivastava (1995) to asses primary components of psychosocial stress, to measure health of employed and housewives health Questionnaire developed by the researcher and satisfaction with life scale (SWLS) developed by Diener, Emmons, Larson & Griffin (1985). Participants' scores were evaluated and analyzed after using statistical techniques like mean, standard deviation, one way ANOVA. The results indicate that employed women scored higher for personal relation in comparison to housewife. Similarly, employed women scored higher for responsibilities stress, as well as health related problem, social status related problems and psychosocial stress total in comparison to housewife. Finally, it may be said that employed women become stressed out when the responsibilities of their jobs become too much for them to handle. They also experience stress from trying to juggle their families and careers.

Keywords: psychosocial stress, life satisfaction, employed women, housewives

INTRODUCTION

Nowadays, women must fulfill the dual roles of career builders and housewives in a globalized society. There have been significant socio-cultural shifts in Indian society, which are seen in the areas of health, education, technology, awareness, and women's empowerment. Higher education made it easier for women to find profitable job in the modern era. These days, more women are pursuing careers in non-traditional fields like engineering, management, science, and technology as well as traditional fields like teaching and nursing. Conversely, housewives who work do not receive any sort of compensation similar to that of hired women. This study was done to find out if housewives or working women are content with their everyday lives and to look at the pattern of psychosocial stress that impacts their health. Numerous studies have shown that the dual roles that employed women play place a great deal of pressure on them and negatively impact their health and well-being because marriage and work both add complexity to a person's life (Williams et.al. 1997; Singh & Singh, 2006).

Everyone talks about stress these days. Its main victims include not just high pressure CEOs but also laborers, slum dwellers, working women, businesspeople, professionals, and even kids. Because of the growing complexity and competition in living standards, stress is an unavoidable part of life. In today's world of rapid change, no one is stress-free, and no career is stress-free. Stress arises for everyone, regardless of the context—family, work, school, company, organization, or any other social or economic activity. "Hans Selye" presented the idea of stress to the biological sciences for the first time in 1936. According to Pascal (1992), stress is the perception of a situation in which one's demands are not being met. Stress is a natural aspect of modern life and will probably only get worse as things get more complicated. The idea of role—which is defined as a person's place within a system—carries a lot of weight. As a result, stress in general and work-related stress in particular have grown commonplace in modern society and have drawn a lot of attention recently. Stress is a topic that is difficult to avoid. There will always be stress in daily life. Numerous factors might contribute to stress, including employment

Psychosocial Stress

A cognitive assessment of the issues involved and the available solutions leads to psychosocial stress. Though psychological The definition of stress is an imbalance between the expectations that are placed on us and our capacity to handle them. When we feel a threat in our life, we experience psychosocial stress. Unsettling things that have happened to you recently can lead to psychosocial stress. An earthquake or hurricane that recently occurred in your neighborhood, or an unexpected health issue that affects you or a loved one, are two examples of these stressful contemporary events. According to the National Institutes of Health (1977), acute psychosocial stress might happen if you have a horrible disease or if a loved one passes away in an accident. Notable occurrences like being pregnant, getting split up, or getting divorced can also cause significant psychological strain. Even though you're stressed up right now because of what's going on in your life, things that happened in the past might still have an impact on you. A paper titled "Field-Deployable Tools for Quantifying Exposures to Psychosocial Stress" from the Initiative Exposure Biology Program was published in 2006. It highlights the significance of questioning individuals about life experiences that may have had a stressful effect on them, such as abuse, bullying, violence, or trauma like a war or earthquake.

Working women's mental health and wellness may be impacted by psychosocial stress, given the demands of their jobs. When the responsibilities of their jobs become too much for them to handle, women become stressed. Apart from mental health issues, women often experience continuous stress, are homemakers or employed, and may experience physical health issues such musculoskeletal disorders or cardiovascular disease. Frequently, persistent issues rather than isolated incidents are what lead to psychosocial stress. Since 1977, physicians have assessed people's experiences and emotions using a set of questions known as the Modified Life Events Section of the Psychiatric Epidemiology Research Interview. It inquires about situations like conflict, prejudice, violence, disease, or poverty that might lead to persistent stress. Chronic psychosocial stressors encompass familial issues as well, such as taking care of an unwell parent or disabled kid. Any perceived threat to our social standing, social esteem, respect, and/or acceptance within a group, as well as threats to our sense of self-worth and threats over which we feel powerless, can all be considered sources of psychosocial stress. The body may experience a stress reaction in response to any of these dangers. These stressors can be among the most exhausting to cope with because they can lead to feelings of alienation and lack of support. Coping may become more challenging as a result.

For ages, women have been expected to prioritize the needs of the family over their own in order to achieve the ideal roles of perfect mother and wife. When a woman deviated from the norm, spoke her mind, or decided to work outside the home, her spouse was held accountable for not treating her well. The perception of working women has, however, significantly shifted in recent years as a result of social mobilization, migration, the rise in the number of professional women in the workforce, etc. As a result, the researcher contends that in addition to working women, homemaker women also face obstacles both within and outside the house. Additionally, their role has evolved. Along with being a mother, wife, and caregiver for the household finances, homemaker women also do many roles. In addition to the stress of being unemployed, a woman who is well qualified but is not working outside the home for whatever reason may feel as though her skills are not being fully utilized.

Women's health is different from men's in many special ways. Women's health is a prime example of population health, which is described as "a state of complete physical, mental, and social wellbeing and not merely the absence of disease or infirmity" by the World Health Organization (2016). Many organizations contend for a more inclusive definition that includes women's general health, better stated as "The health of women," as women's reproductive health is frequently considered as the exclusive focus. The disparities are intensified in developing nations where women face additional challenges and have fewer opportunities in terms of health.. Throughout their lives, about 25% of women will encounter mental health problems. Compared to men, women are more likely to experience anxiety, sadness, and psychosomatic problems. Depression is the most common disease burden worldwide. Women experience depression twice as frequently as men do in the US. Depending on a woman's marital status, her husband's help around the house, her parental status, her attitude toward work, and the specifics of her job, employment can have a positive or negative impact on her physical and mental health (Repetti, Matthews, & Waldron, 1989; Marks & MacDiarmid, 1996; Moen et.al, 1992). Studies have indicated that women's physical health may benefit from paid work (Hibbard & Pope, 1991; Walderon & Jacobs, 1988). Despite the possible increased demands, work outside the home has been linked to improved psychological health (Barnett & Baruch, 1985) and mental and physical health (Repetti et al., 1989). An examination of the research clearly shows that work-related stress alone may not be sufficient predictor of health risk in women employed outside the home; it's possible that the interaction of the multiple roles that the women occupy is relevant to the health benefits or risks of employment acting as a mother, employee, and wife. These findings may have a positive overall impact on global well-being (Pietromonaco, Manis & Forhardt-Lane 1986).

Life Satisfaction

Life satisfaction is the cognitive evaluation of one’s life as a whole. Research indicates that characteristics such as race, socio-economic status, marital status, education, and social involvement, as well as level of self-esteem, presence or absence of depression, and locus of control may influence life satisfaction. Life satisfaction is a predictor of longevity

andpsychiatric morbidity, with a dose response relationship evident between life dissatisfaction and all-cause disease, injury, and mortality. In addition, life satisfaction is related to other health predictors such as favorable self-reported health, social support, and positive health behaviors. One could argue that improved physical health is necessary for a higher quality of life. Individuals may find satisfaction in one area of their lives but not in another; it should be noted that some people may be extremely dissatisfied in one area of their lives while being quite content in other areas. Furthermore, because of the influence of a certain domain, an individual may be content in other areas of their lives yet unsatisfied overall in others (Diener, 1984).

REVIEW OF LITERATURE

Survey was conducted of a representative sample of working and non-working mothers in Tehran in 1998. Four main explanatory factors were examined (personal well- being, socio-demographic, work and work-related, and social-life context variables) alongside a range of mental and physical health outcome variables. Unlike in the West, where women's paid work is generally associated with better health, statistically significant differences between working and non-working women were not found in Tehran. It is argued that this is a result of the counter-balance of the positive and negative factors associated with paid work, such as increased stress on one hand and self-esteem on the other. Iranian society's particular socio-cultural climate has contributed to this finding, with its dominant gender-role ideology; the priority and extra weight placed on women's traditional roles as wives and mothers, and the remarkably influential impact of husbands' attitudes on women's health (Ahmad, 2009). Bhattacharjee et, al. (1983) studied on family adjustment of married working and non-working women. In his research finding he concluded that a woman's adjustment, whether employed or not, is a function of her own personality traits, expectations, andperceptions combined with those of her spouse and family members. Multiple Classifications. Analyses on responses from women explained, that full-time housewives are more dissatisfied with their lives than women employed outside the home. Housewives who had wanted a career were more personally dissatisfied than housewives who had never wanted a career. The career-oriented housewives were the ones who expressed greater personal dissatisfaction than employed women (Townsend & Patricia, 2002).
A Survey of Modern Living, examined self-esteem, psychological well-being, and physical health Women. Results indicate that working women had higher self-esteem and lesspsychological anxiety than housewives. Working women also reported better physical health than housewives (Coleman, & Antonucci, 1976).
Ferree (1976) and earlier studies by other authors have argued that women with jobs outside the home are generally happier and more satisfied with their lives than are full time housewives. It was concluded that both work outside the home and fulltime housewifery havebenefits and costs attached to them; the net result is that there is no consistent or significant differences in patterns of life satisfaction between the two groups.

Balaji (2014) studied various factors (such as the size of the family, the age of children, the work hours and the level of social supports) which could lead to work family conflict and the stress undergone by women employees. He concluded that married women employees experience work family conflict due to the number of hours worked outside the home, flexible or in flexible working hours, size of the family and number of dependants of the family. These factors have severe consequences for the psychological distress and wellbeing of married working women.

Job-related stress factors are adverse working conditions such as excessive noise, extreme temperature or overcrowding (McGrath, 1978), role ambiguities, conflict, overload and under load (Arcold et al, 1986). Explored stress management techniques used by working women are sleep and relaxation, exercise, time management, diet and yoga (Upamany 1997). The research study has reported that supportive work and family policy, effective management, communication, health insurance coverage for mental illness and chemical dependence, and fixed scheduling of work hours were effective in reducing job burnout (Lawless, 1991). Work and family are two important parts of a person's life and both are closely related (Ford et al., 2007). Since an increasing number of women are entering the work force and pursuing careers (Sevim, 2006), they have to balance the competing demands of both workplace and family life (Bickasiz, 2009). Employed are working for longer hours and taking more work at home (Dawn et al, 1999). This situation results in a greater amount of stress for employed . In the present study, there is an important need to find out the pattern of psychosocial stress between employed and housewives and to see the effect of psychosocial stress on working and housewives on the basis of their life satisfaction. Satisfaction with one's life is the ultimate goal of all females, yet it seems to remain so elusive. Women have been, and continued to find satisfaction with their lives.

Research question:
1. Has there been any change in the pattern of psychosocial stress, Health and life satisfaction among Employed and Housewives over the period of time?

Objectives:
1. To find out the pattern of psychosocial stress between employed and housewives.
2. To compare the life satisfaction level of employed and housewives.
3. To compare the health related issue between employed and housewives.
4. To investigate whether psychosocial stress has any effect on life satisfaction amongemployed and housewives.

METHOD

Research Design:
In the present research, sample was drawn from the population of Gorakhpur city government service employed and housewives (i.e., graduate employees and graduate housewives respectively) from urban areas by using purposive sampling technique.

Participants:
The total participant's size taken for the study was eighty (80) out of which 40 participants constituted of employed and 40 constituted of housewives.

Inclusion criteria:
- Respondents who are graduate or having higher educational qualification.
- Employed and Housewives mothers living with their spouse.

Exclusion criteria:
- Those who are suffering from psychiatric/psychological problems.
- Those who are living in joint family.

Measuring Tools:
A set of three measuring tools has been used. Brief descriptions of these measures aregiven below:-

Psychosocial Stress Questionnaire:
This questionnaire was developed by A.K. Srivastava (1995) to asses primary components of psychosocial stress, i.e., pressure, tension, anxiety, conflict, frustration, depression etc. Perceived psychosocial stress emerges due to certain circumstances likephysical and psychological problems failure, constraints, demands, role conflict etc. There were 42 items in the questionnaire which mark out seven dimensions of psychosocial stress. These are:
1. Tense or strained interpersonal relationship
2. Excessive/demanding responsibilities/liabilities and expectations of others
3. Economics constraints/extra economic burden
4. Marriage related problems
5. Health related problems
6. Adverse social situation
7. Perceived or imagined threats to social and economic status or prestige.

Health Questionnaire:
To measure health of employed and housewives health Questionnaire developed by the researcher. It has six dimensions i.e. Physical Health, Social Health, Emotional Health, Mental Health, Environmental Health, Spiritual Health. Each dimension consists of 10 items. And these dimensions calculated from very unhealthy to very healthy.

Satisfaction with Life Scale:
Hindi adaptation of satisfaction with life scale developed by Diener, Emmons, Larson & Griffin (1985) used in this study. This scale had five items which assess life satisfaction in global manner. The responses were made on a seven point scale ranging from strongly agree
(7) to strongly disagree (1). The psychometric properties of the scale were found good. Theretest reliability was 0.82 (after two months) and coefficient alpha was 0.87.

Procedure and Data Analysis
First of all, proper rapport established with the participants. Then the purpose of the study revealed before them and their consent sought. Responses taken from employed women as well as housewives with the help above these measuring tools. After that mean, SD and one- way ANOVA statistical analysis were done.

RESULTS

This section of results includes comparative analysis of the studied variables. To know the mean differences between groups (employed and housewife) among differentdimensions of psychosocial stress one way ANOVA was calculated.

Table 1- Means and SDs of dimensions of Psychosocial Stress as a function of groups

Psychosocial Stress & Dimensions	N	Groups	Mean	SD
Personal Relation	40	Employed	4.22	2.33
	40	Housewife	2.60	2.32
Responsibilities Stress	40	Employed	4.52	2.59
	40	Housewife	2.65	2.22
Economical Problem	40	Employed	4.10	3.63
	40	Housewife	4.05	2.22
Marriage Related Problem	40	Employed	1.70	3.15
	40	Housewife	2.30	2.42
Health Related Problem	40	Employed	4.65	4.37
	40	Housewife	2.95	2.35
Unfavorable Problem	40	Employed	5.70	5.21
	40	Housewife	5.27	4.06
Social Status Related Problem	40	Employed	5.30	3.71
	40	Housewife	3.52	3.12
Psychosocial Stress Total	40	Employed	30.22	16.30
	40	Housewife	23.40	14.51

Table-1 shows the mean comparison between groups for different dimensions ofpsychosocial stress. The one way ANOVA was found to be significant [F (1, 78) = 9.70, p<.01] and mean (4.22) shows that employed group scored higher for personal relation incomparison to housewife group (2.60).

Table 2 Summary of One-Way ANOVA for Psychosocial Stress with its dimensions

Psychosocial Stress & Dimensions	SS	df	M S	F
Personal Relation	Between Groups	1	52.81	9.70**
	Within Groups	78	424.57	
Responsibilities Stress	Between Groups	1	70.31	12.052**
	Within Groups	78	455.07	
Economical Problem	Between Groups	1	.05	0.004
	Within Groups	78	879.50	
Marriage Related Problem	Between Groups	1	7.20	0.911
	Within Groups	78	616.80	
	Between Groups	1	57.80	

Health Related Problem	Within Groups	78	963.00	4.68*
Unfavorable Problem	Between Groups	1	3.61	1.65
	Within Groups	78	1704.37	
Social Status RelatedProblem	Between Groups	1	63.01	5.340*
	Within Groups	78	920.375	
Psychosocial Stress Total	Between Groups	1	931.61	3.911*
	Within Groups	78	18580.57	

Moreover, responsibilities stress found significant at p< .01 level, health related problem found significant at p< .05 level, social status related problem found significant at p< .05 level and psychosocial stress total found significant at p< .05 level also (table 2).
Further, to know the mean differences between groups (employed and housewife) among different dimensions of satisfaction with life one way ANOVA was calculated.

Table 3 Means and SDs of Satisfaction with Life as a function of groups

Satisfaction with Life	N	Groups	Mean	SD
	40	Employed	54.05	12.50
	40	Housewife	56.80	10.11

Summary of ANOVA has been presented in table 4. Result shows that the satisfactionwith life of both groups of women has not reached the significant level.

Table 4 -Summary of One-Way ANOVA for Satisfaction with Life with its dimensions

Psychosocial Stress & Dimensions	SS	df	M S	F
	Between Groups	1	151.25	1.17
Satisfaction with Life	Within Groups	78	129.31	

Moreover, to know the mean differences between groups (employed and housewife) among general health with its dimensions one way ANOVA was calculated.

Table 5- Means and SDs of dimensions of General Health as a function of groups

General Health & Dimensions	N	Groups	Mean	SD
Physical Health	40	Employed	25.10	8.01
	40	Housewife	28.50	5.34
Social Health	40	Employed	29.47	11.32
	40	Housewife	30.22	5.73
Emotional Health	40	Employed	26.05	6.84
	40	Housewife	27.17	5.68
Environmental Health	40	Employed	26.70	5.97
	40	Housewife	26.32	7.12
Spiritual Health	40	Employed	31.00	5.60
	40	Housewife	32.07	5.88
Mental Health	40	Employed	27.50	5.47
	40	Housewife	30.60	5.68
General Health Total	40	Employed	165.70	27.35
	40	Housewife	210.50	235.53

Table-5 shows the mean comparison between groups for different dimensions of general health. The result revealed that physical health was found to be significant [F (1, 78)

= 4.98, p< .05]. Further, mental health was also found to be significant [F (1, 78) = 6.1, p<.05] (table 6).

Table 6- Summary of One-Way ANOVA for General Health with its dimensions

General Health & Dimensions	SS	df	M S	F
Physical Health	Between Groups	1	231.2	4.98*
	Within Groups	78	46.4	
Social Health	Between Groups	1	11.25	.140
	Within Groups	78	80.5	
Emotional Health	Between Groups	1	25.31	.639
	Within Groups	78	39.63	
Environmental Health	Between Groups	1	2.81	.065
	Within Groups	78	43.24	
Spiritual Health	Between Groups	1	23.1	.70
	Within Groups	78	33.03	
Mental Health	Between Groups	1	192.2	6.1*
	Within Groups	78	31.17	
General Health Total	Between Groups	1	40140.8	1.42
	Within Groups	78	28111.5	

DISCUSSION

The major objective of the present study was to find out the pattern of psychosocial stress between employed and housewives. The results revealed that employed women scored higher for personal relation in comparison to housewife. Similarly, employed women scored higher for responsibilities stress, as well as health related problem, social status relatedproblem and psychosocial stress total in comparison to housewife. Women experience stress when the demands of their job are excessive and greater than their capacity to cope with them. In addition, they feel stress to balance their job and family together. They have to balance the competing demands of both workplace and family life (Bickasiz, 2009). Employed women are working for longer hours and taking more work at home (Dawn et al, 1999). This situation results in a greater amount of stress for employed women.

The other objective of the present study was to compare the health related issue between employed women and housewives. Result shows that housewife scored higher for physical health in comparison to employed women. Further, in the case of mental health housewife scored higher in comparison of employed women. The same results found by Nathawat & Mathur, 1993) Pope & Hibbard (1991) and Walderon & Jacobs (1988). According to their suggestions, women's physical health may benefit from having a job. Furthermore, improving psychological, mental, and physical health (Barnett & Baruch, 1985; Repetti et al., 1989) has been linked to the possible increased demands of working outside the home. Some claim that women may not gain from all work situations in terms of health. High job expectations, low work-related social support, and bad workplace conditions were linked to worse health at baseline and more functional decreases throughout a four-year follow-up period, according to a prospective research of 21,290 female registered nurses. Furthermore, Engel (1988) observed both American and Japanese stay-at-home moms feel they can't be happy in this role full-time. However, Japanese women firmly think that working as a wife or mother has a negative impact on marriage and the development of children, and that a wife or mother shouldn't work while her husband wants her at home or when the family has a child in school or adolescence. Women in America are increasingly confident that women can manage the responsibilities of both the home and the workplace. For working women and housewives/mothers, family stress appears to be a strong predictor of wellbeing (Schwartzberg & Dytell, 1998). Women who work and those who stay at home are known to differ from one another, and as such, they need different forms of support in order to successfully fulfill their respective duties. The most common sources of stress for working women are work, kids, and housework; for housewives, the most common sources are children, money, and other obligations (Canam, 1986).

Delimitations:

The present study is confined to women of Gorakhpur city only As we are very much aware that researches in

behavioral sciences are a continuous process because human behavior always undergo change with the change in environment of psycho-socio-cultural milieu and their subsequent influence on individual and social behavior and moreover, individual or group behavior are generally the result of the conjunctive impact of both social environment and psycho-social make-up of individual or the group.

In view of the above contention, there has always been pit-falls in any research investigation; hence, the present study also bears several limitations if such aspects are properly taken care of his future then very significant piece of research work can be created. An important limitation of the present study is that it only studied relatively a small sample group drawn from Gorakhpur city only, so, it is suggested that for more reliable and greater generality larger and varied sample group be studied. Moreover, it is also suggested here that women's perceived reactions on psychosocial stress, life satisfaction level and health related issues must be studied undertaking numerous others socio-demographic variables like socioeconomic background, rural/urban background and caste systems of different religions because these variables seems to be more relevant so far as women's perception on psychological well-being are concerned. Last but not the least, it is to be mentioned here that there may be some other aspects, which may be fruitful to be undertaken in such future investigations. However it must be kept in mind that researches have never any end where last line can be drawn and beyond that no further researches are required..

Implications of the study

Stress has become a worldwide issue in modern times. Due to the rising rivalry in all spheres of life, people are under stress since they all desire greater pleasure. Numerous studies conducted in recent years have shown that women are beginning to work in a wide range of occupations. In order to manage stress in daily life, one might learn to relax and enjoy life, as career women often experience stress at work. A variety of approaches, including as mindfulness breathing, yoga, and meditation, are effective for most women in managing their stress. Stress can lead to deadly illnesses in women, such as hypertension and cardiovascular disorders. Particularly working women, they are the main victims.

The study highlights the relationship between different levels of psychosocial stresses and its impact on women's satisfaction of life. The findings provided a base/module for researchers to develop various coping strategies for employed women and housewives to cope with psychosocial stresses. It will also contribute to social and psychological researcher concerning women work related issues and highlight the importance of various factors necessary for their health. Hence, the study may have significant implications to the society, family members and women as well.

Conclusion and Recommendations:

Based on the acquired data and its interpretations, the following findings have been distilled: Finally, it may be said that working women become stressed out when the responsibilities of their jobs become too much for them to handle. They also experience stress from trying to juggle their families and careers.

1. In the Gorakhpur region of Eastern Uttar Pradesh, where the current study was conducted, it was discovered that housewives had superior health conditions than their working counterparts. 2. The findings showed that working women performed better on personal relationships than housewives did. 3 Similarly, compared to housewives, employed women scored higher overall for psychological stress, health-related problems, and problems connected to social status. 4. Based on current research, it can be said that women who work outside the home must adjust to many new social norms. As a result, their jobs cannot improve their overall quality of life by providing them with more fulfilling experiences than those available to traditional housewives, which would empower women. Therefore, it is recommended that we refrain from addressing the unfavorable parts of women's labor, even though all women are accountable for managing domestic chores. Therefore, family counseling is required to provide them with constructive guidance from psychologists and other behavioral scientists in order to create a friendly atmosphere in the home and to be involved in outside activities that support a higher and healthier standard of life.

It is also implied that males should take responsibility for women in all areas of their lives and give it their all to ensure that they are happy and fulfilled in life.

References

1. Arnold, H. J., and Feldman. (1986). Organizational Behavior. New York: McGraw Hill.
2. Ahmad, S. N. (2009). Women's work and health in Iran: a comparison of working and non-working mothers, *Social Science & Medicine, 54(5*), pp. 753-765.
3. Barnett, R.C. & Baruch, G. (1985). Women involvement in multiple roles and psychological distress, *journal of personality and social psychology, 49,135-145.*
4. Bickazsiz. P. (2009). The effect of Gender role ideology, role salience, role demands and core self-evaluation on

work-family interface. Msc Thesis. Middle EastUniversity Technical University.
5. Bhattacharjee, Pratima, Bhatt, k. Kusum.1983. Family adjustment of married working and non-workingwomen's. *Indian journal of clinical psychology. Vol.10 (2). 497-501.*
6. Coleman, L. M., & Antonucci, T. C. (1976). Impact of Work on Women. *Departmental* Psychology, *19 (2), pp. 290-294.*
7. Diener, E., Emmons, R. A., Larsen, R. J., & Griffin, S. (1985). The Satisfaction with Life Scale. *Journal of Personality Assessment, 49, 71-75.*
8. Duker, Jacob M. 1970. Housing and working wife families. A housing comparison land economics. *Vol. 46(2), 138-145.*
9. Dawn S. Carlson and Pamela L. Perrewe, (1999). "The role of social support in the Stressor-Strain Relationship: An examination of Work Family Conflict," *Journal ofManagement, Vol.25, No.4, pp.513-540.*
10. "Dr Tedros takes office as WHO Director-General". *World Health Organization. 1July 2017.*
11. Ford, M.T, B.A. Heinen and K.L. Langkarner. (2007). Work and family Satisfaction and Conflict; A Meta analysis of cross-domain relation. *Journal of AppliedPsychology, 92:57-80.*
12. Ferree, M. (1976). Working class jobs; housework and paid work as sources of satisfaction. *Social Problems 23, 431-41.*
13. Hans Selye 1979. The stress of life. M C Grew hill. New York.
14. Hibbard, J.H. & Pope, C.R. (1991) Effects of domestic and occupational roles onmorbidity and mortality. *Social Science medicine, 32,805-811.*
15. Hoffman, Lois wadif.1960. Effect of the employment of mothers on parental power relationand the division of house hold tasks marriage and family living. *Vol.22 (1), 27-35.*
16. Howard-Jones, Norman (1974). The scientific background of the International Sanitary Conferences, 1851–1938 (PDF). *World Health Organization*
17. Hirschfield, R. M. A., Lerman , G. L., Schless, A. P., Endicott, J., Lichtenstaeder, S. & Clayton, P. J.; 1977 Modified Life Events sections of the Psychiatric Epidemiology Research Interview (PERI-M); *National Institutes of Mental Health.*
18. Kindig D, Stoddart G (March 2003). "What is population health?" (PDF). *AmericanJournal of Public Health. 93 (3): 380–3*
19. Lawless, P. (1991). Employee Burnout: America's Newest Epidemic. Minneapolis, *MN: North western National Life Employee Benefits Division.*
20. McGrath, J. E. (1976). "Stress and behavior in organizations." In Handbook of Industrial and Organizational Psychology. Dunnett, M. D. (Ed) *Chicago: RandMcNally College publishing 1341-1396.*
21. Moen, P., Dempster-McClain, D., &Williams, R.M., Jr. (1992). Perspective on women's multiple roles and health, *American Journal of Sociology,* 97, 1612-1638.
22. Marks, S.R., & MacDermid, S.M. (1996). Multiple roles and the self; A Theory of role balance. *Journal of Marriage and the family*, 58,417-432
23. McCarthy, Michael (October 2002). "A brief history of the World Health
24. Organization"(PDF). *The Lancet.* **360** (9340): 1111–12 Pietromonaco, P.R., Manis, J. & Forhardt-Lane, K. (1986). Psychological consequences of multiple roles. *Psychology of women quarterly,* 10,373-382.
25. Pascal.1992. Stress and coping. *The Indian experience saga pat*. New Delhi. R.Balaji, "Work Life Balance of Women Employees", *International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology,* Vol3, Issue 10,October 2014, ISSN 2319-8753.
26. Repetti, R.L., Matthews, K.A. &Waldron, I. (1989). Employment and women's Health: Effects of paid Employment on women's mental and physicalhealth."*American Psychologist,"* 44, 1394-1401.
27. Sevim, S.A. (2006). Religious tendency and gender roles: Predictors of the attitudestoward women's work roles. Soc. Behav. Personal. Intl. J. 34: 77- 86.
28. Srivastava, A.K & Pestonjee, D.M. (1995). ICMR psychosocial stress scale. *Indian council of medical research,* New Delhi.15.
29. Townsend, A., & Patricia, G. (2002). Re-Examining the Frustrated Homemaker Hypothesis: *Role Fit, Personal Dissatisfaction, and Collective Discontent,* 22, 563-570.
30. Upamanyu, K. (1997). Stress Management in Educated Women. Indian. J. Soc. Res,38(3):185-189.
31. Waldron, I. &Jacobs, J. (1988). Effects of labor force participation on women's health: New evidence from a longitudinal study. *Journal of Occupational Medicine*,30, 1977-1983.

View publication stats